प्रथम-अध्याय

परिचय

INTRODUCTION

1.1 प्रस्तावना (Preface)

मनुष्य प्रकृति की सर्वश्रेष्ठ कृति है, अन्य प्राणियों की तुलना में वह प्रत्येक दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट है। उसका विकसित मस्तिष्क उसे अन्य प्राणियों की तुलना में श्रेष्ठ बनाता है, इसी कारण वह प्रकृति का दास बनकर नहीं रहता, जैसा अन्य पशु बनकर रहते हैं। वह प्रकृति में अपने अनुसार परिवर्तन करके उसे अपने अनुकूल बनाने का प्रयास करता रहता है, या प्राकृतिक दशाओं के अनुरूप स्वयं को समायोजित करने की चेष्टा करता है। इस प्रक्रिया में मनुष्य की कर्मेन्द्रियाँ विशेष सहायक होती है। अतः इन इन्द्रियों का स्वस्थ होना अति आवश्यक है। ताकि मनुष्य अपने समस्त कार्यों को सुचारू रूप से सम्पन्न कर सके। शास्त्रों में भी कहा गया है कि **''पहला सुख निरोगी काया।''**

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसे समाज में सफल जीवन व्यतीत करने के लिये समाज में रहने वाले दूसरे व्यक्तियों से अनुकूलन करना पड़ता है, साथ ही समाज की प्रचलित मान्यताओं और मूल्यों के अनुसार अपने व्यवहार में परिवर्तन करना पड़ता है। इन कार्यों में शिक्षा मनुष्य की आवश्यक सहायता करती है।

डॉ. वैक्टरायप्पा के अनुसार – **''शिक्षा समाज के बालकों का समाजीकरण करके उसकी सेवा करती है। इसके उद्देश्य – युवाओं को सामाजिक मूल्यों, विश्वासों और समाज के प्रतिमानों को आत्मसात करने के लिये तैयार और उनको समाज की क्रियाओं में भाग लेने के योग्य बनाना है।''**

वास्तव में शिक्षा ही समाज की प्रगति, विकास, परिवर्तन और स्थिरता का मुख्य साधन है।

शिक्षा प्रगतिशील प्रक्रिया है। यह वह प्रयोग है, जिसमें मनुष्य की प्रवृत्तियों का शोधन होता है। उसे जीवन के विविध आयाम प्राप्त होते है। वह शक्ति, स्फूर्ति एवं प्रेरणा प्राप्त करता है तथा अपने जीवन के लक्ष्यों को प्राप्त कर, व्यक्तिगत, सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास में सहभागी बनकर सुयश एवं सम्मान प्राप्त करता है।

आज के युग में विकसित समस्त ज्ञान तथा विज्ञान में मानव व्यवहार के दर्शन होते हैं। मानव–व्यवहार किसी न किसी कारण–प्रतिकारण, क्रिया–प्रतिक्रिया तथा सामाजिक एवं भौतिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है। मानव–व्यवहार पर जिस प्रकार का प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार का कार्य वह करने लगता है। मनोविज्ञान में मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। इसमें मानव–विकास की शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था और प्रौढ़ावस्था आती है। इन अवस्थाओं में होने वाले परिवर्तन तथा परिस्थितियों का प्रभाव मानव–व्यवहार पर पड़ता है।

❖ किशोरावस्था (Adolescence) :

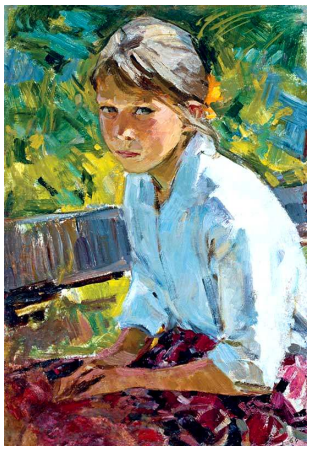

किशोरावस्था, जीवन का सबसे कठिन और नाजुक काल है। इस अवस्था में बालक का झुकाव जिस ओर हो जाता है, उसी दिशा में वह जीवन में आगे बढ़ता है। वह धार्मिक या अधार्मिक, देश–प्रेमी या देश–द्रोही, कर्मण्य या अकर्मण्य–कुछ भी बन सकता है। इसी अवस्था में संसार के सब महान पुरूषों ने अपने भावी जीवन का संकल्प किया है। महात्मा गाँधी ने अपने जीवन में सत्य का अनुसरण करने की प्रतिज्ञा इसी अवस्था से की थी। अतः बालकों के भावी भाग्य और उत्कृष्ट जीवन के निर्माण में इस अवस्था की गरिमा से अपने ध्यान को एक क्षण के लिए भी विचिलित न करके अध्यापकों और अभिभावकों को उनकी शिक्षा का सुनियोजन और संचालन करना अपना परम पुनीत कर्त्तव्य समझना चाहिए। उन्हें वैलेन्टाइन के इस वाक्य को अपना आदर्श सूत्र मनाना चाहिए – ''मनोवैज्ञानिक द्वारा बहुत समय तक उपदेश दिये जाने के बाद अन्त में यह बात व्यापक रूप से स्वीकार की जाने लगी है कि शैक्षिक दृष्टिकोण से किशोरावस्था का अत्यधिक महत्व है।''

⇨ **जरशील्ड** के शब्दों में **''किशोरावस्था वह समय है जिसमें विचारशील व्यक्ति बाल्यावस्था से परिपक्वता की ओर संक्रमण करता है।''**

Adolescence is a period, in which a growing person makes transition from childhood to maturity.

- Jersild

⇨ **स्टेनले हॉल**[1] के अनुसार–**'किशोरावस्था, बड़े संघर्ष, तनाव, तूफान तथा विरोध की अवस्था है।'**

Adolescence is a period of great stress and strain, storm and strike.

– Standley Hall

किशोरावस्था वह समय है जिसमें किशोर अपने को वयस्क समझता है और वयस्क उसे बालक समझते है। वयसंधि की इस अवस्था में किशोर अनेक बुराइयों में पड़ जाता है।

ई.ए. किर्क पैट्रिक (E.A. Kirkpatric)[2] का कथन है – **''इस बात पर कोई मतभेद नहीं हो सकता है कि किशोरावस्था जीवन का सबसे कठिन काल है।''** इस कथन की पुष्टि में निम्नलिखित तर्क दिये जा सकते हैं –

1. इस अवस्था में अपराधी–प्रवृत्ति अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है और नशीली वस्तुओं का प्रयोग आरम्भ हो जाता है।
2. इस अवस्था में समायोजन न कर सकने के कारण मृत्यु–दर और मानसिक रोगों की संख्या अन्य अवस्थाओं की तुलना में बहुत अधिक होती है।
3. इस अवस्था में किशोर के आवेगों और संवेगों में इतनी परिवर्तनशीलता होती है कि वह प्रायः विरोधी व्यवहार करता है जिससे उसे समझना कठिन हो जाता है।
4. इस अवस्था में किशोर अपने मूल्यों, आदर्शों और संवेगों में संघर्ष का अनुभव करता है, जिसके फलस्वरूप वह अपने को कभी–कभी द्विविधापूर्ण स्थिति में पाता है।

5. इस अवस्था में किशोर, बाल्यावस्था और प्रौढ़ावस्था–दोनों अवस्थाओं में रहता है। अतः उसे न तो बालक समझा जाता है और न प्रौढ़।

6. इस अवस्था में किशोर का शारीरिक विकास इतनी तीव्र गति से होता है कि उसमें क्रोध, घृणा, चिड़चिड़ापन, उदासीनता आदि दुर्गुण उत्पन्न हो जाते हैं।

7. इस अवस्था में किशोर का पारिवारिक जीवन कष्टमय होता है, क्योंकि स्वतन्त्रता का इच्छुक होने पर भी उसे स्वतंत्रता नहीं मिलती है और उससे बड़ों की आज्ञा मानने की आशा की जाती है।

8. इस अवस्था में किशोर के संवेगों, रूचियों, भावनाओं, दृष्टिकोणों आदि में इतनी अधिक परिवर्तनशीलता और अस्थिरता होती है, जितनी उसमें पहले कभी नहीं थी।

9. इस अवस्था में किशोर में अनेक अप्रिय बातें होती है, जैसे–उद्दण्डता, कठोरता, भुक्खड़पन, पशुओं के प्रति निष्ठुरता, आत्म–प्रदर्शन की प्रवृत्ति, गन्दगी और अव्यवस्था की आदतें एवं कल्पना और दिवास्वप्नों में विचरण।

10. इस अवस्था में किशोर को अनेक जटिल समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जैसे–अपनी आयु के बालकों और बालिकाओं से नये सम्बन्ध स्थापित करना, माता–पिता के नियंत्रण से मुक्त होकर स्वतंत्र जीवन व्यतीत करने की इच्छा करना, योग्य नागरिक बनने के लिए उचित कुशलताओं को प्राप्त करना, जीवन के प्रति निश्चित दृष्टिकोण का निर्माण करना एवं विवाह, पारिवारिक जीवन और भावी व्यवसाय के लिए तैयारी करना।

❖ किशोरावस्था की मुख्य विशेषताएँ[3]

(Chief Characteristics of Adolescence)

किशोरावस्था का काल संसार के सभी देशों में एक–सा नहीं माना जाता है। श्री हैरीमैन ने लिखा है– ''योरोपीय देशों में किशोरावस्था का समय लड़कियों में लगभग 13 वर्ष से लेकर 21 वर्ष और लड़कों में 15 वर्ष से लेकर 21 तक

माना जाता है। भारत देश में लड़कियों की 11–17 वर्ष और लड़कों की 13–19 वर्ष तक किशोरावस्था की सीमा मानी जाती है।''

अतः किशोरावस्था की विशिष्टता को ध्यान में रखते हुऐ विशेषताओं का वर्णन निम्नानुसार है :–

1. **विकासात्मक विशेषताएँ** (Developmental Characteristics) : किशोरावस्था में बालक का सर्वांगीण विकास होता है, वह शारीरिक, मानसिक और संवेगात्मक आदि क्षेत्रों में विकास के चर्मोत्कर्ष पर होता है। इसी समय पुरूषत्व एवं नारीत्व सम्बन्धी विशेषताएँ भी प्रकट होने लगती है। इसीलिए वे स्वयं अपने–अपने समूहों में नियन्त्रित होते चले जाते हैं, जैसा **कॉलसनिक** ने लिखा है– **''किशोरों एवं किशोरियों को अपने शरीर एवं स्वास्थ्य की विशेष चिन्ता रहती है। किशोरों के लिए बलशाली, स्वस्थ्य और उत्साही बनना एवं किशोरियों के लिए अपनी आकृति को स्त्रीत्व आकर्षण प्रदान करना महत्वपूर्ण होता है।''**

   इसी प्रकार से किशोरों एवं किशोरियों में मानसिक क्षमताओं का पूर्ण विकास हो जाता है। बुद्धि की स्थिरता, कल्पना शक्ति का बाहुल्य, तर्क शक्ति की प्रचुरता, विचार में परिपक्वता और विरोधी मानसिक दशाएँ आदि मानसिक विशेषताओं का विकास हो जाता है। शारीरिक एवं मानसिक विकास के कारण उनके संवेगात्मक विकास पर भी प्रभाव पड़ता है। इस आयु के किशोर एवं किशोरियाँ भावात्मक एवं रागात्मक जीवन व्यतीत करते हैं। वे अपने निश्चय के समक्ष सामाजिक मान्यताओं की भी परवाह नहीं करते हैं क्योंकि उनका मन और तन उद्धेगात्मक शक्ति से परिपूर्ण रहता है।

2. **आत्म–सम्मान की भावना** (Feeling of self Respect) : किशोरावस्था में आत्मसम्मान के भाव की स्वतः ही वृद्धि हो जाती है। वे समाज में वही स्थान प्राप्त करना चाहते हैं, जो बड़ों को प्राप्त है। इसीलिए आत्मनिर्भर बनना, नायकत्व करना, प्रत्येक कार्य करने को तैयार रहना और महान पुरूषों की नकल करना आदि आयामों को किशोर प्रगट करते रहते हैं। वे स्वयं को पूर्ण समझते हैं सभी कार्यों को करने की क्षमता रखते हैं। उनमें, माता–पिता या अन्य किसी व्यक्ति के संरक्षण में रहना सम्भव नहीं होता है। अतः हम कह सकते हैं कि इस आयु में किशोर एंव किशोरियों का जीवन अपूर्वता के साथ विकसित होता है, जिसमें उनकी स्वयं की विशेषताएँ होती हैं, जैसा कि ब्लेयर, जॉन्स एवं सिम्पसन ने माना है–''किशोर का महत्वपूर्ण बनना, अपने समूह में स्थिति (स्टेट्स) प्राप्त करना और श्रेष्ठ व्यक्ति के रूप में अपने को स्वीकार किया जाना चाहता है।''

3. **अस्थिरता** (Ustability) : अस्थिरता शब्द का विकास के रूप में अर्थ होता है–'निर्णय में चंचलता' किशोरावस्था में लिये गये निर्णय अस्थिरता से भरे होते हैं। वह शारीरिक शक्ति के वशीभूत होकर निर्णय ले लेता है जो उसके लिए लाभदायक कम और हानिकारक अधिक होते हैं। वे अपने कार्यों में, रूचियों में, आदतों में, संवेगों में और सीखने आदि में 'लापरवाह' की तरह से संलग्न होते हैं। वे जल्दबाजी में अपनी विशिष्टता को भी खो बैठते हैं। उनको यर्थाथ बनावटी लगता है। अतः वे विभिन्न क्षेत्रों में अपनी विशिष्टता को भी खो बैठते हैं। उनको यथार्थ बनावटी

लगता है। अतः वे विभिन्न क्षेत्रों में अपनी अस्थिरता को प्रकट करते रहते हैं। इसी बात की पुष्टि ई. बे. स्ट्रांग के अध्ययनों से भी होती है।

4. **किशोरापराध की प्रवृत्ति का विकास** (Development of Juvenile Delinquent Tendency) : जब एक निश्चित आयु के बीच के लड़के और लड़कियाँ समाज के नियमों का उल्लंघन एवं कानूनों का विरोध करने लगते है, तो उन्हें किशोरापराध की संज्ञा दी जाती है। इस उम्र की सबसे बड़ी विशेषता होती है–अनुशासनहीनता और नियमों तो तोड़कर व्यवहार करना। इस अवस्था में जीवन–दर्शन का निर्माण, मूल्यों का बनना, आशाओं का पूरा न होना, असफलता प्रेम की तीव्र लालसा और अदम्य साहस आदि विशेषताओं के वशीभूत होकर किशोर स्वयं को अपराधी मनोवृत्ति का बना लेता है और उसी के द्वारा अपने अहम् की तुष्टि करता है। बेलेन्टाइन का मत है– ''किशोरावस्था, अपराध–प्रवृत्ति के विकास का नाजुक समय है। पक्के अपराधियों की एक विशाल संख्या किशोरावस्था में ही अपने व्यावसायिक जीवन का गम्भीरतापूर्वक आरम्भ करती है।''

5. **काम भावना की परिपक्वता** (Maturity of Sex Instincts) : इस अवस्था में कामेन्द्रियों का पूर्ण विकास हो जाता है और काम भावना अपनी पराकाष्ठा पर होती है। शैशवकाल और बाल्यावस्था की सुषुप्त काम भावना इस समय अपने पूर्ण यौवन पर होती है। मनोवैज्ञानिकों के अध्ययनों से पता चलता है कि किशोरों में बेचैनी, नाखून चबाना, पेन्सिले मुँह में देना, लड़कियों में बार–बार आँचल लपेटना, स्वप्नातीत विचरण आदि विशेषताएँ स्पष्ट देखने को मिलती है। काम भावना की परिपक्वता का विकास तीन क्रमों में होता है–

I. **आत्म प्रेम** (Auto Eroticism)–किशोरावस्था में लड़के एवं लड़कियाँ स्वयं को आकर्षक बनाने में लगे रहते हैं, ताकि वे दूसरों को प्रभावित कर सकें। यह भाव आत्म प्रेम, आत्म सम्मान से प्रेरित रहता है। वह प्रत्येक समय अपने में मस्त रहता है और वही करता है जो उसकों अच्छा लगता है। इसी भावना को डॉ. फ्रायड ने 'नारासिसिज्म' कहकर पुकारा था।

II. **समलिंगीय काम भावना** (Homosexual Feeling)–आत्म प्रेम की भावना के पश्चात् इस अवस्था में सामूहिक भाव पैदा होते हैं। लड़के, लड़कों के समूह में रहना पसन्द करते हैं और लड़कियाँ, लड़कियों के समूह में, ये दोनों ही अपना–अपना राजदार बनाने के लिए मित्रता के नये आयामों की खोज करते हैं। ये लोग साथ–साथ कक्षा में बैठते हैं, पिकनिक पर जाते हैं, पार्क में बैठकर बातचीत करते है और साथ–साथ घूमते–फिरते है। इस प्रकार इस आयु में काम भावना का विकास समलिंगीय समूहों में भी विकसित होता है।

III. **विषम लिंगीय काम भावना** (Hetrosexual Feeling)–किशोरावस्था के अन्तिम चरण में किशोर और किशोरियाँ एक–दूसरे के प्रति आकर्षित होते है। इनके अन्दर संसार के प्रति यथार्थ दृष्टिकोण विकसित होने लगता है। ये लोग अपने जीवन साथी की कल्पना में मानसिक रूप से संतृप्त रहते हैं। इसीलिए इनमें विषय लिंगीय प्रेम प्रस्फुटित होता है। लड़का लड़की के प्रति अधिक आकर्षित होता है।

6. **समाज सेवा** (Social Service)–किशोरावस्था में समाज सेवा की भावना बहुत होती है। लड़के ऐसा कार्य करना चाहते हैं कि वे अपने पिता के समान सम्मान प्राप्त कर सकें और लड़कियाँ अपनी माँ के समान आदर प्राप्त करना चाहती है। वे स्वयं को सामाजिक उत्सवों, कार्यों और सेवाओं से ओत–प्रोत कर लेते हैं और उसको ही प्रमुखता देने लगते हैं। इसी का परिणाम है कि जब भी कोई आयोजन होता है किशोर एवं किशोरियों को याद किया जाता है। रॉस महोदय ने स्पष्ट किया है – ''किशोर समाज सेवा के आदर्शों का निर्माण और पोषण करता है। उसका निष्कपट हृदय मानव जाति के प्रेम से ओत–प्रोत रहता है और आदर्श समाज के निर्माण में सहायता देने के लिए लालायित रहता है।''

7. **कल्पना का बाहुल्य** (Exuberance of Imagination)–इस अवस्था की प्रमुख विशेषता है कल्पना का दैनिक जीवन में प्रयोग होना। मन की चंचलता, ध्यान परिवर्तन और मूल्यों की अस्थिरता के कारण वह यथार्थता से हट जाता है और कल्पना जगत में डूबा रहता है। इसी अवस्था को मनोवैज्ञानिकों ने 'दिवा–स्वप्न' नाम दिया है। जब कोई वर्तमान से अनभिज्ञ होकर कल्पनात्मक महलों की दुनियाँ के स्वप्न देखने प्रारम्भ कर देता है तो इस अवस्था को उसकी दिवा–स्वप्न की अवस्था कहा जाता है। इस विशेषता के कारण व्यक्ति में सौन्दर्यात्मक एवं भावात्मक मूल्यों का विकास होता है जो उनको कवि, कलाकार, नाटककार, उपन्यासकार, चित्रकार और संगीतकार आदि के व्यक्तित्त में ढालने में सहायक होते है।

8. **अपराध वृत्ति** (Criminal Tendency)–किशोरावस्था में अस्थिरता के कारण मानसिक झुकाव नाजुक स्थिति से होकर गुजरता है। इस अवस्था के लड़के एवं लड़कियों को भौतिक जगत का बनावटी आकर्षण दिखाकर चतुर अपराधी अपराध वृत्ति की ओर आकर्षित कर लेते हैं। बाद में धीरे–धीरे इनका जीवन अपराध करने अलावा और कुछ नहीं रह पाता है और समाज एवं राष्ट्र में अपमान सहते रहते हैं। ये कभी भी अच्छे नागरिक नहीं बन पाते है। मनोवैज्ञानिकों के मनोविश्लेषण से स्पष्ट हो गया है कि ये सामाजिक बनने के लिए छटपटाते रहते हैं, लेकिन प्रत्यक्ष रूप से कुछ भी करने में असफल रहते हैं।

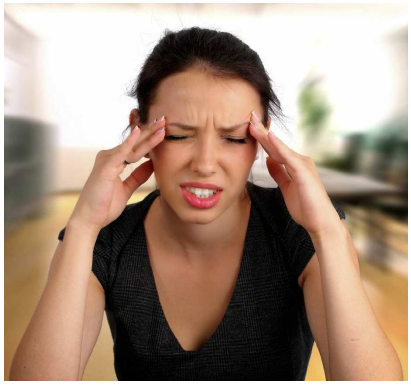

9. **धार्मिक भावों का उदय** (Development of Religious Feelings) : शैशवावस्था की स्वार्थ–भावना, किशोरावस्था में सामाजिक भावना अर्थात् दूसरों की सहायता करने में सुख महसूस करने में परिवर्तित हो जाती है। इसी समय किशोर एवं किशोरियाँ धार्मिक भावना एवं अलौकिकता में विश्वास करने को उत्सुक रहते हैं। वे अपने को मानव समाज के लिए अर्पण करने के लिए तैयार होते हैं उनको एक नयी ज्योति दिखलायी देती है, जो भविष्य का मार्गदर्शन देती है। धीरे–धीरे वे उसको आत्मसात् करते हैं और स्वयं को ईश्वरीय शक्ति के प्रति आस्थावान बनाना प्रारम्भ कर देते हैं। इसी के फलस्वरूप आत्मचेतन, संयम, नियन्त्रण, कर्त्तव्य पालन और समाज सेवा के

भाव आदि महान् व्यावहारिक क्रियाएँ प्रारम्भ होती हैं। अतः इसी अवस्था में धार्मिक भावनाएँ प्रकट होकर अपना प्रभाव स्थायी बनाती है।

10. **स्वाभाविकता का विकास** (Development of Originality)–जब कोई व्यक्ति अपने कार्यों एवं व्यवहारों में नवीनता प्रकट करना प्रारम्भ कर देता है, जो दूसरे के कार्यो और व्यवहारों से भिन्न होती है और अपूर्वता की परिचायक होती है, इसे व्यक्ति की स्वाभाविकता कहते हैं। टी.पी. नन महोदय का यह विचार है कि व्यक्ति की पहचान उसकी अपूर्व स्वाभाविकता के फलस्वरू ही है, अन्य किसी से नहीं। इस अवस्था के लड़के एवं लड़कियाँ इसीलिए दूसरों को आकर्षित करते हैं। इस शक्ति का विकास जिसमें जितना तीव्र होता है वही अधिक सामाजिक बन जाता है। अतः 'स्टेनले हाल' के शब्दो में – **''किशोरावस्था एक नया जन्म है, इसी अवस्था में उच्चतर और श्रेष्ठतर मानवीय गुण प्रकट होते हैं।''**

"Adolescence is a new birth, the higher and superior human traits are revealed at this stage."

हम कह सकते हैं कि किशोरो में व्यवहार सम्बन्धी अनेक समस्याएँ तथा व्यवहार–प्रवृत्तियाँ पाई जाती है। इसका अभिप्राय यह भी नहीं है कि उनका ज्ञान प्राप्त करना असम्भव है। शिक्षक एवं अभिभावक किशोरों की समस्याओं का सतर्कता से अध्ययन करके, उसके व्यवहार को उचित दशा प्रदान कर, उसे आत्म–संतोष प्रदान कर सकते हैं। हम अपने इस निष्कर्ष की पुष्टि में **ब्लेयर, जोन्स व सिम्पसन** के अग्रलिखित वाक्यों को उद्धत कर रहे है– ''किशोर की कुछ विशिष्ट समस्याएँ होती है। यदि शिक्षक एवं अभिभावक, किशोरों को वयस्कावस्था में सरलतापूर्वक प्रवेश करने में सहायता देना चाहते हैं, तो उनको समान रूप से किशोरों की अनोखी समस्याओं के स्वरूप से अवगत होना चाहिए। इस कार्य के लिए आधारभूत व्यवहार–सिद्धान्त, किशोरावस्था एवं प्रत्येक किशोर से सम्बन्धित विशिष्ट ज्ञान का होना पहली शर्त है।''

❖ किशोरावस्था में शिक्षा का स्वरूप (Nature of education in Adolescence)[4]

किशोरावस्था में शिक्षा के सम्बन्ध में **हैडो रिपोर्ट** में लिखा गया है – ''ग्यारह या बारह वर्ष की आयु में बालक की नसों में ज्वार उठना शुरू हो जाता है। इसको किशोरावस्था के नाम से पुकारा जाता है। यदि इस ज्वार का बाढ़ के समय ही उपयोग कर लिया जाय एवं इसकी शक्ति और धारा के साथ–साथ नई यात्रा आरम्भ कर दी जाय, तो सफलता प्राप्त की जा सकती है।''

"There is a tide whice begins to rise in the veins of youth at the age of eleven or twelve. It is called by the name of adolscence. If that tide can be taken at the flood and a new voyage begun in the strength and along the flow of its current, we think that it will move on to fortune." - Hadow Committee Report

उपर्युक्त शब्दों से स्पष्ट हो जाता है कि किशोरावस्था आरम्भ होने के समय से ही शिक्षा को एक निश्चित स्वरूप प्रदान किया जाना अनिवार्य है। इस शिक्षा का स्वरूप क्या होना चाहिए, इस पर प्रकाश डाल रहे है; यथा –

1. **शारीरिक विकास के लिए शिक्षा** (Education for physical Development) : किशोरावस्था में शरीर में अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन होते हैं, जिनकों उचित शिक्षा प्रदान करके शरीर को सबल और सुडौल बनाने का उत्तरदायित्व विद्यालय पर है। अतः उसे अग्रलिखित का आयोजन करना चाहिए – (1) शारीरिक और स्वास्थ्य–शिक्षा (2) विभिन्न प्रकार के शारीरिक व्यायाम, (3) सभी प्रकार के खेलकूद आदि।

2. **मानसिक विकास के लिए शिक्षा** (Education for Mental Development) : किशोर की मानसिक शक्तियों का सर्वोत्तम और अधिकतम विकास करने के लिए शिक्षा का स्वरूप उसकी रूचियों, रूझानों, दृष्टिकोणों और योग्यताओं के अनुरूप होना चाहिए। अतः उसकी शिक्षा में अग्रलिखित को स्थान दिया जाना चाहिए– (1) कला, विज्ञान, साहित्य, भूगोल, इतिहास आदि सामान्य विद्यालय–विषय (2) किशोर की जिज्ञासा को सन्तुष्ट करने और उसकी निरीक्षण–शक्ति को प्रशिक्षित करने के लिए प्राकृतिक, ऐतिहासिक आदि स्थानों का भ्रमण, (3) उसकी रूचियों, कल्पनाओं और दिवास्वप्नों को साकार करने के लिए पर्यटन, वाद–विवाद, कविता लेखन, साहित्यिक गोष्ठी आदि पाठ्यक्रम–सहगामी क्रियायें।

3. **संवेगात्मक विकास के लिए शिक्षा** (Education for Emotional Development) : किशोर अनेक प्रकार के संवेगों से संघर्ष करता है। इन संवेगों में से कुछ उत्तम और कुछ निकृष्ट होते हैं। अतः शिक्षा में इस प्रकार के विषयों और पाठ्यक्रम–सहगामी क्रियाओं को स्थान दिया जाना चाहिए, जो निकृष्ट संवेगों का दमन या मार्गान्तीकरण और उत्तम संवेगों का विकास करें। इस उद्देश्य से कला, विज्ञान, साहित्य, संगीत, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि की सुन्दर व्यवस्था की जानी चाहिए।

4. **सामाजिक सम्बन्धों की शिक्षा** (Education for Social Relationship) : किशोर अपने समूह को अत्यधिक महत्व देता है और उसमें आचार–व्यवहार की अनेक बातें सीखता है। अतः विद्यालय में ऐसे समूहों का संगठन किया

जाना चाहिए, जिनकी सदस्यता ग्रहण करके किशोर उत्तम सामाजिक व्यवहार और सम्बन्धों के पाठ सीख सके। इस दिशा में सामूहिक क्रियाएँ, सामूहिक खेल और स्काउटिंग अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

5. **व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुसार शिक्षा** (Education for Individual Differences) : किशोर में व्यक्तिगत विभिन्नताओं और आवश्यकताओं को सभी शिक्षाविद् स्वीकार करते हैं। अतः विद्यालयों में विभिन्न पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे किशोरों की व्यक्तिगत मांगों को पूर्ण किया जा सके। इस बात पर बल देते हुए **माध्यमिक शिक्षा आयोग** (Secondary Education Commission) ने लिखा है – ''हमारे माध्यमिक विद्यालयों को छात्रों की विभिन्न प्रवृत्तियों, रूचियों और योग्यताओं को पूर्ण करने के लिए विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों की व्यवस्था करनी चाहिए।''

6. **पूर्व–व्यावसायिक शिक्षा** (Pre-Occupational Education) : किशोर अपने भावी जीवन में किसी–न–किसी व्यवसाय में प्रवेश करने की योजना बनाता है। पर वह यह नहीं जानता है कि कौन–सा व्यवसाय उसके लिए सबसे अधिक उपयुक्त होगा। उसे इस बात का ज्ञान प्रदान करने के लिए विद्यालय में कुछ व्यवसायों की प्रारम्भिक शिक्षा दी जानी चाहिए। इसी बात को ध्याम में रखकर हमारे देश के बहुउद्देशीय विद्यालयों में व्यावसायिक विषयों की शिक्षा दी जानी चाहिए।

7. **जीवन–दर्शन की शिक्षा** (Education for Philosophy of Life) : किशोर अपने जीवन–दर्शन का निर्माण करना चाहता है, पर उचित पथ–प्रदर्शन के अभाव में वह ऐसा करने में असमर्थ रहता है। इस कार्य का उत्तरदायित्व विद्यालय पर है। इसका समर्थन करते हुए **ब्लेयर, जोन्स एवं सिम्पसन** (Blair, Jones and Simpson) ने लिखा है – "किशोर को हमारे जनतंत्रीय दर्शन के अनुरूप जीवन के प्रति दृष्टिकोण का विकास करने में सहायता देने का महान उत्तरदायित्व विद्यालय पर है।"

8. **धार्मिक व नैतिक शिक्षा** (Religious and Moral Education) : किशोर के मस्तिष्क में विरोधी विचारों में निरन्तर द्वन्द्व होता रहता है। फलस्वरूप, वह उचित व्यवहार के सम्बन्ध में किसी निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाता है। अतः उसे उदार, धार्मिक और नैतिक शिक्षा दी जानी चाहिए ताकि वह उचित और अनुचित में अन्तर करके अपने व्यवहार को समाज के नैतिक मूल्यों के अनुकूल बना सके। इसीलिए, **कोठारी कमीशन** (Kothari Commission) ने हमारे माध्यमिक विद्यालयों में नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों (Moral and Spiritual Values) की शिक्षा की सिफारिश की है।

9. **यौन–शिक्षा** (Sex Education) : किशोर बालकों और बालिकाओं की अधिकांश समस्याओं का सम्बन्ध उनकी काम–प्रवृत्ति से होता है। अतः विद्यालये में यौन–शिक्षा की व्यवस्था होना अति आवश्यक है। इस शिक्षा की आवश्यकता और विधि पर अपना मत प्रकट करते हुए **रॉस** (Ross) ने लिखा

है – ''यौन–शिक्षा की परम आवश्कता को कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता है। इस बात की आवश्यकता है कि किशोर को एक ऐसे वयस्क द्वारा गोपनीय शिक्षा दी जाय, जिस पर उसे पूर्ण विश्वास हो।''

10. **बालकों व बालिकाओं के पाठ्यक्रम में विभिन्नता** (Differentiation in Curriculum of Boys and Girls) : बालकों और बालिकाओं के पाठ्यक्रमों में विभिन्नता होना अति आवश्यक है। इसका कारण बताते हुए **बी.एन. झा** (B.N. Jha) ने लिखा है– ''लिंग–भेद के कारण और इस विचार से कि बालकों और बालिकाओं को भावी जीवन में समाज में विभिन्न कार्य करने है, दोनों के पाठ्यक्रमों में विभिन्नता होनी चाहिए।''

11. **उपयुक्त शिक्षण–विधियों का प्रयोग** (Use of Proper Methods of Teaching) : किशोर में स्वयं परीक्षण, निरीक्षण, विचार और तर्क करने की प्रवृत्ति होती है। अतः उसे शिक्षा देने के लिए परम्परागत विधियों का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। उसके लिए किस प्रकार की शिक्षण–विधियाँ उपयुक्त हो सकती है, इस सम्बन्ध में **रॉस** (Ross) का मत है – ''विषयों का शिक्षण व्यावहारिक ढंग से किया जाना चाहिए और उनका दैनिक जीवन की बातों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित किया जाना चाहिए।''

12. **किशोर के प्रति वयस्क का–सा व्यवहार** (Adult Type Behaviour towards Adolescence) : किशोर को न तो बालक समझना चाहिए और न उसके प्रति बालक का–सा व्यवहार किया जाना चाहिए। इसके विपरीत, उसके प्रति वयस्क का–सा व्यवहार किया जाना चाहिए। इसका कारण बताते हुए **ब्लेयर, जोन्स एवं सिम्पसन** (Blair, Jones and Simpson) ने लिखा है – ''जिन किशोरो के प्रति वयस्क का–सा जितना ही अधिक व्यवहार किया जाता है, उतना ही अधिक वे वयस्कों का–सा व्यवहार करते है।''

13. **किशोर के महत्व को मान्यता** (Recognition of Adolescence) : किशोर में उचित महत्व और उचित स्थिति प्राप्त करने की प्रबल इच्छा होती है। इसकी इस इच्छा को पूर्ण करने के लिए, उसे उत्तरदायित्व के कार्य दिये जाने चाहिए। इस उद्देश्य से सामाजिक क्रियाओं, छात्र–स्वशासन और युवक–गोष्ठियों का संगठन किया जाना चाहिए।

14. **अपराध–प्रवृत्ति पर अंकुश** (Control over Crime Tendency) : किशोर में अपराध करने की प्रवृत्ति का मुख्य कारण है–निराशा। इस कारण को दूर करके उसकी अपराध–प्रवृत्ति पर अंकुश लगाया जा सकता है। विद्यालय उसको अपनी उपयोगिता का अनुभव कराके उसकी निराशा को कम कर सकता है।

15. **किशोर–निर्देशन** (Guidance to Adolescence) : स्किनर (Skinner) के शब्दों में –''किशोर को निर्णय करने का कोई अनुभव नहीं होता है।'' अतः वह स्वयं किसी बात का निर्णय नहीं कर पाता है और चाहता है कि कोई उसे इस कार्य में निर्देशन (Guidance) और परामर्श दे। यह उत्तरदायित्व उसके अध्यापकों और अभिभावकों को लेना चाहिए।

किशोरावस्था, जीवन का सबसे कठिन और नाजुक काल है। इस अवस्था में बालक का झुकाव जिस ओर हो जाता है, उसी दिशा में वह जीवन में आगे बढ़ता है। वह धार्मिक या अधार्मिक, देश–प्रेमी या देश–द्रोही, कर्मण्य या अकर्मण्य–कुछ भी बन सकता है।

❖ किशोरावस्था में शारीरिक विकास (Physical Development in Adolescence)[5]

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों एवं शरीरशास्त्रियों ने किशोरावस्था को सबसे जटिल अवस्था माना है। इसीलिए **हालिंगवर्थ** ने लिखा है – **''व्यापक दन्त कथा यह है कि प्रत्येक बालक बदल रहा है; जैसे ही परिपक्वता आती है, लोक वार्ताओं में वर्णित व्यक्तित्व उभरता है।''**

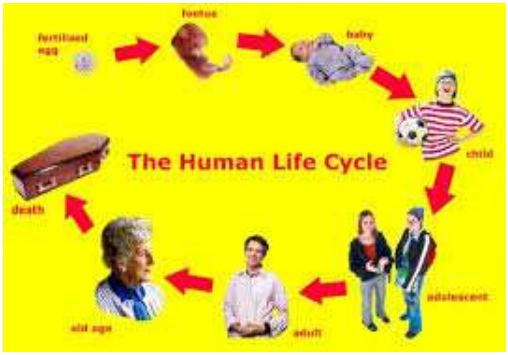

''The wide spread myth is that every child is changing, puberty comes forth the explain personality of myth takes shape."

- Hollingworth

अतः हम यहाँ पर किशोरावस्था में शारीरिक विकास का वर्णन निम्नलिखित प्रकार से करेंगे–

1. **भार एवं लम्बाई** (Weight and length)–किशोरावस्था में बालक एवं बालिकाओं के भार एवं लम्बाई में तीव्रता के साथ वृद्धि होती है। 18 वर्ष के अन्त तक लड़कों का भार लड़कियों के भार से लगभग 25 पौण्ड अधिक हो जाता है। शरीर–शास्त्रियों के अवलोकनों से स्पष्ट हो चुका है कि लड़कियों की लम्बाई 16 वर्ष तक परिपक्व हो जाती है, जबकि लड़कों की 18 वर्ष तक परिपक्व हो जाती है।

2. **हड्डियाँ एवं दाँत** (Bones and teeths)–सम्पूर्ण शरीर में हड्डियों का ढाँचा पूर्ण हो जाता है। हड्डियों में मजबूती आ जाती है और छोटी–छोटी हड्डियाँ भी एक–दूसरी से जुड़ जाती है। इस अवस्था में दाँतों का स्थायीकरण हो जाता है। लड़के एवं लड़कियों में अक्ल के दाँत निकलने आरम्भ होते हैं। ये दाँत अवस्था के अन्तिम दिनों में निकलते हैं।

3. **सिर एवं मस्तिष्क** (Head and Mind)–किशोरावस्था में सिर एवं मस्तिष्क का विकास निरन्तर जारी रहता है। सिर का पूर्ण विकास मध्य किशोरावस्था में ही हो जाता है। विद्वानों ने इसकी आयु लगभग 15 से 17 वर्ष के बीच मानी है। इस समय मस्तिष्क का भार 1200 से लेकर 1400 ग्राम के बीच में होता है।

4. **अन्य भाग** (Other Parts)–इस अवस्था में माँसपेशियों में सुडौलता एवं मजबूती आनी प्रारम्भ हो जाती है 12 वर्ष की आयु में माँसपेशियों का भार शरीर के कुल भार का लगभग 33 प्रतिशत और 16 वर्ष की आयु में लगभग 44 प्रतिशत होता है। इस अवस्था में हृदय की धड़कन में पूर्ण कमी आनी प्रारम्भ हो जाती है और यह एक मिनट में 72 बार होती है। लड़कों एवं लड़कियों में पुरूषत्व एवं स्त्रीत्व की पूर्ण विशेषताएँ प्रकट होने लगती है।

❖ किशोरावस्था में मानसिक विकास (Mental Development in Childhood)[6]

किशोरावस्था में मानसिक विकास की स्थिति निम्नलिखित प्रकार से विकसित होती है–

1. **बुद्धि में स्थिरता** (Stability in Intelligence)–किशोरावस्था में बुद्धि का विकास पूर्ण हो जाता है। इसीलिए इस अवस्था को बुद्धि में स्थिरता लाने वाली अवस्था भी कहा जाता है। टरमन, जोन्स एवं कोनाई और स्पीयरमैन आदि विद्वानों ने बुद्धि का पूर्ण विकास 14 से 16 वर्ष के बीच माना है। मनोशास्त्रियों के अनुसार, बुद्धि में प्रखरता का विकास ही सम्भव है, क्योंकि बुद्धि तो जन्मजात होती है।

2. **मानसिक शक्तियाँ** (Mental Powers)–इस अवस्था में बालकों एवं बालिकाओं की संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, अवधान, स्मृति, विस्मृति, कल्पना, चिन्तन, तर्क और समस्या समाधान आदि मानसिक शक्तियों का पूर्ण विकास हो जाता है। वह इसका प्रयोग विभिन्न परिस्थितियों में आसानी से करता है।

3. **चिन्तन में स्वाभाविकता** (Reality in Thinking)– इस आयु में चिन्तन में नवीनता और स्वाभाविकता आना प्रारम्भ हो जाता है। वह सामाजिक रूढ़ियों, परम्पराओं, रीति–रिवाजों एंव अन्ध–विश्वासों आदि का विरोध करता है और नये मापदण्डों का प्रयोग करता है। अतः उसके चिन्तन को एक नयी दिशा मिलती है।

4. **कल्पना शक्ति में तीव्रता** (Sharpness in Imagination Power)– किशोरावस्था में कल्पना शक्ति का बाहुल्य रहता है। वे अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए दिवास्वप्न देखते हैं। उनकी इस कल्पना शक्ति को सही मार्गदर्शन देकर कला, संगीत, खेल, साहित्य एवं अन्य रचनात्मक कार्यों मे मौलिकता का प्रदर्शन किया जाता है। अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि कल्पना शक्ति की अधिकता बालिकाओं में अधिक होता है, अपेक्षाकृत बालकों के।

5. **रूचि में विविधता** (Differences in Interest)–किशोरावस्था में रूचियों का विकास तीव्रता से होता है। स्त्री एवं पुरूष अपनी–अपनी रूचियों का चुनाव भिन्न–भिन्न तरीके से करते हैं। बालिकाओं में स्त्रियोचित रूचियों का विकास होता है और बालकों में पुरूषोचित रूचियों का। अतः रूचि विविधता होना स्वाभाविक है।

❖ किशोरावस्था में सामाजिक विकास (Social Development in Adolescence)[7]

किशोरावस्था मानवीय जीवन की अनोखी अवस्था होती है। अतः सामाजिक विकास पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। किशोर एवं किशोरी, व्यक्ति–व्यक्ति के लिए, व्यक्ति समूह के लिए और समूह अन्य समूहों के लिए होने वाली अन्तः क्रियाओं के माध्यम से सामाजिक सम्बन्धों में विकास करते हैं। अतः हम यहाँ पर किशोरावस्था में सामाजिक विकास को प्रस्तुत करते हैं–

1. **आत्म–प्रेम** (Auto Eroticism)– इस अवस्था में लड़के एवं लड़कियाँ स्वयं से अधिक प्रेम स्थापित करने लगते हैं। वे स्वयं को आकर्षक बनाने, सजाने, सवांरने में अधिक समय व्यतीत करते हैं। इसका मुख्य कारण विषम लिंगीय आकर्षण होता है। विद्यालय स्तर पर किये गये अध्ययनों से प्रकट होता है कि किशोरियाँ इस बात में रूचि रखती है कि कौन–सा किशोर उसको देखकर क्या सोचता है? और किशोर तो किशोरियों के बारे में बातचीत करते ही रहते हैं। अतः आत्म–प्रेम का भाव अचेतन अवस्था की लिंगीय चेतनता ही है।

2. **समलिंगीय समूह** (Homosexual Group)–इस अवस्था में किशोर एवं किशोरियों को अपने लिंगीय बनावट का पूर्ण अहसास होने लगता है। वे स्वयं समान लिंग के प्रति रूचि जागृत करने लगते हैं। वे अपने आयु समूह के सक्रिय एवं प्रतिष्ठित सदस्य बन जाते हैं। वे अपने अन्दर अवस्था एवं त्याग को आवश्यक गुण के रूप में स्थापित करते हैं। जब कभी उनकी अवस्था एवं त्याग को ठेस लगती है, तो वे समाज के साथ असामान्य व्यहार प्रगट करने लगते हैं और आन्तरिक संघर्ष उत्पन्न हो जाता है।

3. **सामाजिक चेतना का उदय** (Development of Social Feeling)–इस अवस्था में समूह भावना, आस्था और त्याग का व्यापक रूप सामाजिक चेतना के रूप में देखने को मिलता है। किशोर एवं किशोरी के क्रिया–कलाप विद्यालय, समुदाय, राज्य और राष्ट्र एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक विकसित होने लगते हैं। वे स्वयं के दायरे से निकलकर मानवयी दायरे में प्रवेश करते हैं ताकि समाज का अधिक से अधिक भला कर सकें। इसीलिए इतिहास के अनुसार, देश पर प्राण न्यौछावर करने वाले वीर किशोर एवं किशोरी ही अधिक थे।

4. **भिन्नता में स्थायित्व** (Stability in Differenciation)–इस इवस्था में मानवीय सम्बन्ध स्थिरता की ओर प्रस्थान करते हैं। अस्थिरता एवं शारीरिक आवेग एवं तनाव की स्थिति से किशोर एवं किशोरी निकल कर मित्रता को स्थायी बनाते हैं। आगे चलकर यही मित्रता आत्मीय सम्बन्धों में बदल जाती है। इस प्रकार से किशोर एवं किशोरी अपने चारों तरफ एक आत्मीय एवं सहयोगी परिवेश का निर्माण करते हैं, जो उनके भविष्य निर्माण में सहायक होता है।

5. **समायोजन में अस्थिरता** (Unstability in Adjustment)–किशोरावस्था में संवेगों की तीव्र अभिव्यक्ति होती है। ये लोग अपनी इच्छाओं एवं आकांक्षाओं को निश्चित मापदण्डों के बिना पूरा करना चाहते हैं, जो समाज को अमान्य होता है। अतः ये अपना समायोजन सही रूप से नहीं कर पाते हैं। वे अपने दमन के प्रति और स्वतन्त्रता हनन के प्रति विद्रोह करने लगते हैं। यही भावना कुछ हद तक किशोरियों में भी पायी जाती है।

6. **सामाजिक पहचान** (Social Recognition)–किशोरावस्था का मुख्य आकर्षण 'सामाजिक पहचान' को स्थापित करने के लिए किशोर एवं किशोरियों का क्रियाशील रहना है। इसके लिए वे अपने व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाने के लिए तत्पर रहते है। वे परिश्रम, लगन, परोपकारिता, स्वतन्त्रता एवं सामाजिक कार्यों में हिस्सा लेना आदि कार्यों में प्रमुख भूमिका अदा करते

हैं। इस प्रकार से वे स्वयं की समाज में पहचान स्थापित करने में तत्परता दिखलाते हैं।

अन्त में कहा जा सकता है कि किशोर एवं किशोरियों के अन्दर सामाजिक चेतना की जागृति ही भावी राष्ट्रीय एकता एवं मानवीय एकता के लिए प्रारम्भिक प्रयास है।

❖ सामाजिक विकास में विद्यालय का योगदान (Contribution of School Towards social Development)[8]

बालकों के सामाजिक विकास में विद्यालय का विशेष योगदान रहता है। बालक के सामाजिक विकास के दृष्टिकोण से परिवार के पश्चात विद्यालय का ही स्थान सबसे महत्वपूर्ण होता है। यदि विद्यालय का वातावरण जनतन्त्रीय है; अर्थात् विद्यालय के क्रिया–कलापों में बालकों का भी हाथ रहता है, तो बालक का सामाजिक विकास अविराम गति से होता चला जाता है। यदि विद्यालय का वातावरण ऐसा नहीं है, अर्थात् विद्यालय के सिद्धान्तों के अनुसार विद्यालय का अनुशासन दण्ड और दमन पर आधारित है, तो बालक का सामाजिक विकास उचित प्रकार से नहीं हो पाता। बालक के सामाजिक विकास में शिक्षा का भी विशेष प्रभाव पड़ता है। यदि शिक्षक शान्त स्वभाव का तथा सहानुभूति रखने वाला है, तो छात्र उसके व्यवहार की भांति व्यवहार करते है, परन्तु इसके विपरीत, यदि शिक्षक का मानसिक स्वास्थ्य ठीक नहीं होता, तो छात्र भी अपना मानसिक सन्तुलन नहीं रख पाते। सफल और योग्य शिक्षकों के सम्पर्क से बालकों के सामाजिक विकास पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

विद्यालय के खेल–कूद भी बालक के सामाजिक विकास में विशेष स्थान रखते है। बालक खेल द्वारा अपने सामाजिक व्यवहार का प्रदर्शन करता है सामूहिक खेलों के द्वारा बालक के सामाजिक गुणों का विकास होता है। खेल के अभाव में बालक का सामाजिक विकास नहीं हो पाता। **स्किनर** का कथन है – **''खेल का मैदान बालक का निर्माण स्थल है। वहाँ उसे मिलने वाले सामाजिक और यांत्रिक उपकरण उसके सामाजिक विकास को निर्धारित करने में सहायता करते हैं।''**

"The sports ground is a building place for a child. The available social and mechanical equipments in the grounds are the deciding factors of his social development."

❖ किशोरावस्था को प्रभावित करने वाले कारक[9] :

किशोरावस्था को प्रभावित करने वाल महत्वपूर्ण कारक निम्नलिखित हैं :–

1. **वंशानुक्रम** (Heredity)–थार्नडाइक (Thorndike) और शिविजंगर (Schewesinger) ने अपने अध्ययनों द्वारा सिद्ध कर दिया है कि बालक, वंशानुक्रम से कुछ मानसिक गुण और योग्यताएँ प्राप्त करता है, जिनमें वातावरण किसी प्रकार का अन्तर नहीं कर सकता है। इसी विचार का समर्थन करते हुए, गेट्स एवं अन्य (Gates and Others) ने लिखा है– ''किसी व्यक्ति का उससे अधिक विकास नहीं हो सकता है, जितना कि उसका वंशानुक्रम सम्भव बनाता है।''

2. **परिवार का वातावरण** (Family Environment)– परिवार के वातावरण का बालक के मानसिक विकास से घनिष्ठ सम्बन्ध है। दुःखद और कलहपूर्ण वातावरण में बालक का उतना मानसिक विकास होना सम्भव नहीं है, जितना कि सुखद और शान्त वातावरण में। इस सम्बन्ध में **कुप्पूस्वामी** (Kuppuswamy) का मत है – **''एक अच्छा परिवार, जिसमें माता–पिता में अच्छे सम्बन्ध होते हैं, जिसमें वे अपने बच्चों की रूचियों और आवश्यकताओं को समझते हैं, एवं जिसमें आनन्द और स्वतंत्रता का वातावरण होता है, प्रत्येक सदस्य के मानसिक विकास में अत्यधिक योग देता है।''**

3. **परिवार की सामाजिक स्थिति** (Social Status of Family)– उच्च सामाजिक स्थिति के परिवार के बालक का मानसिक विकास अधिक होता है। इसका कारण यह है कि उसको मानसिक विकास के जो साधन उपलब्ध होते हैं, वे निम्न सामाजिक स्थिति के परिवार के बालक के लिए दुर्लभ होते हैं। इसकी पुष्टि में **स्ट्रैंग** (Strang) के अग्रांकित शब्द उद्धत

किये जा सकते हैं– **''उच्च सामाजिक स्थिति वाले परिवार के बच्चे बुद्धि की मौखिक और लिखित परीक्षाओं में स्पष्ट रूप से श्रेष्ठ होते हैं।''**

4. **परिवार की आर्थिक स्थिति** (Economic Status of Family)– टर्मन (Terman) ने अपने परीक्षणों के आधार पर बताया है कि प्रतिभाशाली बालक दरिद्र क्षेत्रों से आने के बजाय अच्छी आर्थिक स्थिति वाले परिवारों से अधिक आते हैं। इसका कारण यह है कि इन बालकों को कुछ विशेष सुविधाएँ उपलब्ध रहती है, जैसे– उचित भोजन, उपचार के पर्याप्त साधन, उत्तम शैक्षिक अवसर, आर्थिक कष्ट से सुरक्षा आदि।

5. **माता–पिता की शिक्षा** (Education of Parents)– अशिक्षित माता–पिता की अपेक्षा शिक्षित माता–पिता का बालक के मानसिक विकास पर कहीं अधिक प्रभाव पड़ता है। **स्ट्रैंग** (Strang) का कथन है– **''माता–पिता की शिक्षा, बच्चों की मानसिक योग्यता से निश्चित रूप से सम्बन्धित है।''**

6. **उचित प्रकार की शिक्षा** (Proper Education)– बालक के मानसिक विकास के लिए उचित प्रकार की शिक्षा अति आवश्यक है। ऐसी शिक्षा ही उसके मानसिक गुणों और शक्तियों का विकास करती है। **अरस्तू** (Aristotle) का यह कथन पूर्णतया सत्य है– **''शिक्षा मनुष्य की शक्ति का, विशेष रूप से उसकी मानसिक शक्ति का विकास करती है।''**

"Education develops man's faculty, especially his mind."

7. **विद्यालय** (School) : अच्छा विद्यालय, बालक के मानसिक विकास का वास्तविक और महत्वपूर्ण कारक है। **कुप्पूस्वामी** (Kuppuswamy) के शब्दों में – **''अच्छा विद्यालय ऐसा पाठ्यक्रम प्रस्तुत करता है, जो छात्रों की रूचियों और आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विभिन्न क्रियाओं से परिपूर्ण रहता है। ऐसा विद्यालय स्वस्थ मानसिक विकास का एक वास्तविक कारण है।''**

8. **शिक्षक** (Teacher)– बालक के मानसिक विकास में शिक्षक का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। यदि शिक्षक का मानसिक विकास अच्छा है, यदि वह बालक के प्रति प्रेम और सहानुभूति का व्यवहार करता है, और यदि वह उचित शिक्षण–विधियों एवं उचित शिक्षण–सामग्री का प्रयोग करता है, तो बालक का मानसिक विकास होना स्वाभाविक है।

9. **शारीरिक स्वास्थ्य** (Physical Health)– शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक विकास का मुख्य आधार है। निर्बल और अस्वस्थ बालक की अपेक्षा सबल और स्वस्थ बालक अधिक परिश्रम करके अपने मानसिक विकास की गति और सीमा में वृद्धि कर सकता है। इसलिए, शारीरिक स्वास्थ्य पर अति प्राचीन काल से बल दिया जा रहा है। अरस्तू का कथन है– ''स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क होता है।''

10. **समाज** (Society)–प्रत्येक बालक का जन्म किसी–न–किसी समाज में होता है। वही समाज उसके मानसिक विकास की गति और सीमा को निर्धारित करता है। यदि समाज में अच्छे विद्यालयों, पुस्तकालयों, वाचनालयों, बालभवनों, मनोरंजन के साधनों आदि की उत्तम व्यवस्था है, तो बालकों का मस्तिष्क अविराम गति से विकसित होता चला जाता है।

विभिन्न अवस्थाओं में बालक के सामाजिक विकास और उसको प्रभावित करने वाले तत्वों के संदर्भ में यह बता देना आवश्यक है कि सामाजिक विकास न तो केवल इन्हीं तत्वों पर निर्भर रहता है और न इसका स्वतंत्र अस्तित्व है। इसके विपरीत, इसका बालक के शारीरिक, मानसिक और संवेगात्मक विकास अर्थात् उसके व्यक्तित्व के पूर्ण विकास से घनिष्ठ सम्बन्ध है। उसके शरीर की रचना, उसके स्वास्थ्य की दशा, उसके मस्तिष्क की तत्परता की सीमा और संवेगों का स्वरूप, उसके सामाजिक विकास को वांछनीय या अवांछनीय बनाता है। इसीलिए **गेट्स** व **अन्य** का मत है– **''सामाजिक प्राणी के रूप में व्यक्ति के व्यवहार का विकास उसके व्यक्तित्व के विकास के रूप में होता है।''**

"The development of a person's behaviour as a social creature proceeds apace with the development of his individuality."

- Gates and Other

प्रत्येक समाज तथा विद्यालय विद्यार्थियों के विकास में रुचि लेता है। अतः विद्यालय की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का समुचित विकास करना है। व्यक्तित्व का समुचित विकास योग्यता एवं समायोजन की क्षमता को पुष्ट करता है।

किशोरों के जीवन में अनेक प्रकार की अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियाँ आती हैं। उन परिस्थितियों के अनुरूप अनुकूलित व्यवहार अपेक्षित है जो किशोरावस्था में यथोचित समायोजन एवं मार्गदर्शन शिक्षा द्वारा सम्भव है।

❖ शिक्षा का अर्थ :

प्रजातंत्रात्मक शासन प्रणाली में शिक्षा ही राष्ट्र की उन्नति की आधारशिला है। शिक्षा से ही व्यक्ति को उसके कर्तव्य और अधिकारों का बोध होता है। जब कर्तव्य और अधिकार का बोध हो जायेगा, तभी राष्ट्र की राजनीतिक व राष्ट्रीय सुरक्षा सुदृढ़ हो सकती है।

शिक्षा शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की **''शिक्ष्''** धातु से हुई है जिसका अर्थ है –सीखना और सिखाना। शिक्षा में वह सब कुछ निहित है जो हम समाज में रह कर सीखते हैं।

हिन्दी भाषा के ''शिक्षा'' शब्द को अंग्रेजी भाषा में "Education" कहा जाता है। अंग्रेजी भाषा के ''एजूकेशन'' शब्द की व्युत्पत्ति लेटिन भाषा के 'एडूकेटम'' शब्द से हुई। लेटिन भाषा के ही ''एडूकेयर'' और ''एडूसीयर'' शब्द भी ''एडूकेटम''शब्द के पर्याय है। इनका अर्थ हैः–

1. **एडूकेटम** – शिक्षित करना, पढ़ाने–लिखाने की प्रक्रिया।
2. **एडूकेयर** – पालन पोषण करना, बाहर ले आना या विकसित करना।
3. **एडूसीयर** – विकसित करना, निकालना

आंग्ल भाषा के ''एजूकेशन''[10] शब्द का शब्दिक अर्थ इस प्रकार है :–

E → Expert - अर्थात् शिक्षा बालक को **निपुण** बनाती है।

(निपुण)

D → Discipline - अर्थात् शिक्षा बालक को **अनुशासित** करती है।
(अनुशासन)

U → Useful - अर्थात् शिक्षा बालक को जीवन के लिये **उपयोगी** ज्ञान
(उपयोगी) प्रदान करती है।

C → Creative - अर्थात् शिक्षा बालक में **सृजनात्मकता** का गुण विकसित
(सृजनात्मक) करती है।

A → Awareness- बालक को **जागरूक** बनाती है।
(जागरूकता)

T → Truth - अर्थात् शिक्षा बालक को **सत्य के मार्ग** पर चलने के लिये
(सत्य) प्रेरित करती है।

I → Intelligence - अर्थात् शिक्षा बालक को **प्रज्ञावान** यानि बुद्धिमान बनाती है।
(प्रज्ञा)

O → Obedient - अर्थात् शिक्षा बालक के अंदर **आज्ञापालन** का भाव उत्पन्न
(आज्ञाकारी) करती है।

N→ Nobility - अर्थात् शिक्षा बालक को **सौजन्य** व **सज्जन** बनाती है।
(सौजन्य)

शिक्षा की परिभाषायें[11] :

भारतीय शिक्षाविदों व विचारकों के अनुसार :–

- **शंकराचार्य** के अनुसार, **''शिक्षा आत्मानुभूति के लिये है।''**
- **विवेकानन्द** के अनुसार, **''शिक्षा मानव में निहित दैवी पूर्णता की अभिव्यक्ति है।''**
- **टैगोर** के अनुसार, **''उच्चतम शिक्षा वह है जो सम्पूर्ण सृष्टि से हमारे जीवन का सामंजस्य स्थापित करती है।''**
- **महात्मा गाँधी** के अनुसार, **''शिक्षा से मेरा अभिप्राय है – बालक और मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क तथा आत्मा में पाये जाने वाले सर्वोत्तम गुणों का सर्वांगीण विकास।''**

- **डॉ. राजेन्द्र प्रसाद** के अनुसार, **''शिक्षा से अभिप्राय है, मानव में दो प्रकार की समरूपता स्थापित करना प्रथम–उसके निजी स्व के साथ और दूसरी अन्य सदस्यों के साथ।''**

पाश्चात्य विचारकों के अनुसार :–

- **पेस्टालॉजी** के अनुसार, **''शिक्षा, मनुष्य की अन्तर्निहित शक्तियों का स्वाभाविक, सामंजस्यपूर्ण तथा प्रगतिशील विकास है।''**
- **प्लेटो** के अनुसार, **''शिक्षा से मेरा अभिप्राय उस प्रशिक्षण से है, जो बालकों में उचित आदतों के निर्माण द्वारा सद्‌गुण की प्रथम प्रवृत्ति उत्पन्न करता है, जो आप में जीवन के आरम्भ से अन्त तक उस वस्तु के प्रति सदैव घृणा उत्पन्न करती है जिससे आपको घृणा करनी चाहिए और उस वस्तु के प्रति प्रेम उत्पन्न करती है जिससे आपको प्रेम करना चाहिये। मेरी दृष्टि में यही सच्ची शिक्षा है।''**
- **जॉन ड्यूवी** के अनुसार, **''शिक्षा अनुभवों के सतत् पुर्ननिर्माण द्वारा जीवन की प्रक्रिया है। वह व्यक्ति में उन समस्त क्षमताओं का विकास है, जो उसको अपने वातावरण को नियन्त्रित करने एवं अपनी सम्भावनाओं को पूर्ण करने के योग्य बनाती हैं।''**

किशोरावस्था की सबसे बड़ी देन है – किशोरों के सोचने–विचारने और व्यवहार में मूल्यों का परिवर्तन होना। मूल्यों के इन परिवर्तनों में सत्य के प्रति मनोवृत्ति, धार्मिक विचार, सामाजिक उत्तरदायित्व, प्रशंसा, नैतिक मान्यताओं का उदार रूप, कुछ आदर्शों का चयन आदि प्रमुख हैं। इसी प्रकार उसके स्वभाव में उदारता व सहनशीलता भी आ जाती है और वह सत्य का निरूपण परिस्थितियों के आधार पर करता है।

अतएव किशोरों के व्यक्तित्व के सन्तुलित विकास व शैक्षिक समस्याओं के समाधान के लिए अन्तराष्ट्रीय स्तर पर किशोरावस्था शिक्षा को पाठ्यक्रम में भी शामिल करने की अनुशंसा की गयी है। देश एवं प्रदेश स्तर पर किशोरावस्था शिक्षा को स्कूली पाठ्यक्रम में शामिल करने की अनुशंसा की गयी है। देश व प्रदेश स्तर पर **राष्ट्रीय जनसंख्या शिक्षा परियोजना एवं एड्स कन्ट्रोल सोसाइटी** किशोरावस्था शिक्षा के लिए कार्यरत है।

❖ किशोरावस्था की समस्याएँ (Problems of Adolescence Stage)

किशोरावस्था जीवन का एक नाजुक एवं संवेदनशील मोड़ है। यह जीवन को विकसित भी कर सकता है और अंधेरी, तंग गलियों में भटका भी सकता है क्योंकि इस उम्र में किया गया साहस अपने चरम उफान पर होता है। यह उम्र है कुछ कर गुजरने की, अपनी क्षमताओं को विकसित करने का और जो ऐसा कुछ तय कर लेता है, वह भविष्य के सुनहरे पथ पर कदम बढ़ा लेता है।

किशोरवय की कुछ विशेषतायें हैं तो कुछ समस्यायें भी होती है। बुद्धिमता है कि किशोरों की क्षमताओं एवं विशेषताओं को बढ़ाया जाये तथा उचित मार्गदर्शन में उनकी निजी तथा चुभती समस्याओं का हल खोजा जाये। किशोरवय की सर्वोपरि विशेषता है जीवन–ऊर्जा से ओत–प्रोत होना। इस ऊर्जा को सुनियोजित, संयमित एवं विकसित करना सबसे बड़ी आवश्यकता है। इस ऊर्जा क्षरण को रोकने के लिये कुसंगति से दूर रहना चाहिये। अल्हड़ मन बड़ा ही अनुकरण प्रिय होता है। उसके सामने यदि श्रेष्ठ आदर्श प्रस्तुत नहीं किये जायेंगे तो वह भटकेगा ही । अतः इन्हें भटकने के लिये ये जितने जिम्मेदार हैं उनसे कहीं अधिक हम और हमारा समाज भी, जिम्मेदार है। ऐसी अनेक समस्यायें हैं जिनके भँवर में कितने किशोर अपने जीवन को डाल चुके हैं। इन तमाम समस्याओं का उचित समाधान ही उन्हें समुचित विकास के पथ पर अग्रसर कर सकता है। इनकी कलियों में प्राण–ऊर्जा भरकर उन्हें सुन्दर फूलों जैसा खिलने में मददगार साबित हो सकता है।

किशोरावस्था में किशोरों के समक्ष निम्नलिखित सामाजिक[12] एवं शैक्षिक समस्याएँ आती है–

1. **संवेगात्मक अस्थिरता** (Emotional Unstability)–किशोरावस्था में किशोरों के संवेग अस्थिर होते हैं। उनमें तीव्रता से उतार–चढ़ाव आते रहते है। काम, क्रोध, प्रेम आदि संवेग काफी तीव्र होते है। किशोरों द्वारा लिये गये निर्णय अधिकतर बचकाने तथा अस्थिर प्रवृत्ति के द्योतक होते हैं। वे अपने कार्यो, रूचियों एवं आदतों में लापरवाह होते हैं। वे प्रत्येक क्षेत्र में अपनी विशिष्टता प्रदर्शित करने का प्रयास करते है तथा संवेगात्मक अस्थिरता का परिचय देते हैं।

2. **काम सम्बन्धी समस्याएँ** (Sex Related Problems)–किशोरावस्था में किशोरों के समक्ष काम सम्बन्धी कई समस्याएँ होती है। वे विपरीत लिंग के प्रति आकर्षित हो जाते हैं तथा शारीरिक परिवर्तन के कारण उनकी काम भावना पराकाष्ठा की सीमा पार कर जाती है। किशोरावस्था में किशोरों द्वारा काम सम्बन्धी अपराध भी किये जाते हैं। इस समय किशोरों में आत्म प्रेम, समलिंगीय काम भावना तथा विषम लिंगीय काम भावना पायी जाती है।

3. **किशोरापराध की प्रवृत्ति का विकास** (Development of Juvenile Delinquent Tendency)–किशोरावस्था में किशोर कई बुरी आदतों का शिकार हो जाते हैं तथा कानून का उल्लंघन करने लगते हैं। उनमें अपराधी प्रवृत्ति पनपने लगती है। वे अपराध करने में आनन्द अनुभव करने लगते है। अपराधी व्यक्ति अधिकतर किशोरावस्था में ही इस क्षेत्र में पदार्पण करते है।

4. **अनुशासनहीनता की प्रवृत्ति** (Tendency of Indiscipline)–किशोरावस्था में किशोरों में एक अन्य प्रवृत्ति अनुशासनहीनता की पायी जाती है। किशोर अनुशासनहीन होकर नियमों को तोड़कर व्यवहार करने लगते है तथा इस समय दर्शन का निर्माण, नवीन मूल्यों की ओर प्रेरित होना, असफलता के कारण अपराधी मनोवृत्ति अपना लेता है।

5. **अहम् की समस्या** (Ego Problem)–किशोरावस्था में किशोरों के अन्दर सर्वाधिक अहम् की समस्या होती है। वे अपने को उच्च से उच्चतर दिखाने का प्रयास करते हैं। इसीलिए कॉलेजों में कई बार दो समूहों में झगड़े–फसाद होते रहते हैं। किशोर अपने अहम् की सन्तुष्टि कर हर सम्भव प्रयास करते हैं।

6. **शारीरिक विकास की असमानता :** किशोरावस्था में बालक–बालिकाओं के शरीर में विकास असामान्य रूप से होने लगता है। लड़कों की आवाज में कर्कशता तथा भारीपन आ जाता है जबकि लड़कियों की आवाज सुरीली

हो जाती है। इस अवस्था में शरीर के विभिन्न अंगों पर बाल उगना प्रारम्भ हो जाते हैं। लड़कों में दाढ़ी, मूँछ निकलना प्रारम्भ हो जाती है तथा लड़कियों के स्तनों में उभार आ जाता है। लड़कियों में मासिक धर्म का आना उनके पूर्ण किशोर होने का संकेत होता है। पूर्ण किशोरावस्था की पहचान परिवर्तनों का स्थायी हो जाना तथा असामान्यता का समाप्त हो जाना है। इस प्रकार किशोर अपने आपको असहज महसूस करने लगते हैं।

7. **व्यवसाय के चुनाव की समस्या :** किशोरावस्था में बालक–बालिकायें अपने भावी व्यवसाय की समस्या से चिंतित रहते हैं। हाईस्कूल में आते ही विद्यार्थी कैरियर को लेकर भविष्य के लिये नई–नई योजनायें बनाने लगते हैं तथा उनकी सफलता–असफलता पर विचार करने लगते हैं। इस सम्बन्ध में **स्ट्रोंग** (Strong) का कथन है कि – **''जब छात्र हाईस्कूल में होता है, तब वह किसी व्यवसाय को चुनने, उसके लिये तैयारी करने, उसमें प्रवेश करने और उसमें उन्नति करने के लिये अधिक से अधिक चिंतित होता जाता है।''**

8. **विद्रोह की भावना :** किशोरावस्था में बालक–बालिकाओं में विद्रोह की भावना प्रबल रूप धारण कर लेती है क्योंकि उन्हें किसी भी प्रकार का बंधन, रोक–टोक, अथवा अंकुश स्वीकार्य नहीं होता है। वह हर बात को तर्क के आधार पर स्वीकार करना चाहता है और तर्क के अभाव में वह अपने माता–पिता तथा परिवारजनों से विद्रोह कर उठता है। **कालसेनिक** के अनुसार – **''किशोर, प्रौढ़ों को अपने मार्ग में बाधा समझता है, जो उसे अपनी स्वतंत्रता का लक्ष्य प्राप्त करने से रोकती है।''**

9. **ईश्वर व धर्म में अटूट विश्वास :** बाल्यावस्था में बालक–बालिकाओं के मन में ईश्वर व धर्म के बारे में अनेक शंकायें उत्पन्न होती रहती हैं। जिनका

समाधान किशोरावस्था के प्रारम्भ होते ही होना शुरू हो जाता है और किशोरों में ईश्वर व धर्म के प्रति विश्वास पैदा हो जाता है। जिसके कारण उनकी ईश्वर व धर्म में अटूट निष्ठा हो जाती है।

10. **समाज सेवा की भावना :** किशोरावस्था में बालक–बालिकाओं के मन में समाज सेवा की तीव्र भावना उत्पन्न हो जाती है। वह समाज सेवा के नाम पर कुछ भी कर गुजरने के लिये तैयार हो जाते हैं। किशोर इस बात को समझने लगते हैं कि किस स्थान पर उन्हें साामजिक मान्यता प्राप्त होगी। इस सम्बन्ध में **रॉस महोदय** का यह कथन उल्लेखनीय है कि, **''किशोर समाज सेवा के आदर्शों का निर्माण व पोषण करता है। उसका उदार ह्रदय मानव जाति के प्रेम से ओत–प्रोत होता है और वह आदर्श समाज का निर्माण करने में सहायता देने के लिये उद्विग्न रहता है।''**

11. **अर्थाभाव की समस्या :** प्रायः देखा जाता है कि किशोरावस्था के दौरान किशोरों की भौतिक आवश्यकताऐं भी बढ़ जाती हैं जिससे अपनी सभी आवश्यकाताओं के पूर्ति के लिये वे अपने माता–पिता अथवा अन्य लोगों से मदद लेने में शर्म महसूस करते हैं और माता–पिता भी किशोर होने पर असमर्थता जाहिर करते हैं अथवा उन्हें किशोरावस्था का अहसास दिलाते हैं जिससे अर्थ पूर्ति हेतु वे विभिन्न प्रकार से नैतिक एवं अनैतिक तरीके अपनाते हैं। यह किशोरावस्था की प्रमुख समस्याओं में से एक है।

12. **नैतिक मूल्यों का अभाव :** प्रायः देखा जाता है कि पारिवारिक वातावरण एवं माता–पिता का अशिक्षित होना एवं उनमें नैतिक मूल्यों का अभाव किशारों में परिलक्षित होता है। माता–पिता द्वारा परिवार में दिये गये संस्कारों का सीधा प्रभाव किशोरों के मन मस्तिष्क पर पड़ता है। गलत पारिवारिक संस्कारों से उनमें अनुशासनहीनता एवं विद्रोह की भावना का विकास होता है। इसके विपरीत माता–पिता द्वारा परिवार में दिये गये अच्छे संस्कारों के कारण किशोर समाज में उच्च सामाजिक सफलता को प्राप्त करते हैं। नैतिक मूल्यों के अभाव में किशोर उच्च शिक्षित होते हुए

भी सामाजिक असफलता को प्राप्त करते हैं और गैर सामाजिक कार्यों में लिप्त हो जाते हैं। आतंकवादी अजमल कसाब इसका प्रमुख उदाहरण है।

13. **शैक्षिक समायोजन की समस्या** : प्रायः देखा जाता है कि छात्र जब उच्च कक्षाओं में प्रवेश लेते हैं तो वे अन्य विद्यार्थियों के साथ अपने आपको समायोजित नहीं कर पाते हैं। जिससे उनमें हीन भावना की वृद्धि होने लगती है। जिसका असर उनके व्यक्तित्व पर पड़ने लगता है। अतः उनके उचित समायोजन में शिक्षकों के व्यवहार एवं विद्यालय वातावरण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

14. **आत्मविश्वास की कमी** : किशोरावस्था में प्रायः कुछ कर गुजरने की तमन्ना होती है और मनचाहा कार्य पूर्ण न हो पाने से किशोरों के आत्मविश्वास में कमी आ जाती है और वे अपने आपको असहाय महसूस करने लगते हैं ऐसे में उन्हें माता–पिता अथवा शिक्षकों के उचित मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। सही मार्गदर्शन मिलने पर वे अपनी मंजिल को आसानी से पा सकते हैं और उनके आत्मविश्वास में वृद्धि होती है।

15. **तकनीकी विकास एवं प्रतिस्पर्धा** : इक्कीसवीं सदी के इस दौर में जहाँ विश्व के सभी देश तकनीकी रूप विकसित होते जा रहे हैं वहीं इस विकास के कारण प्रतिस्पर्धा की बढती जा रही है। जिसके चलते बेरोजगारी की समस्या बढ़ती जा रही है। प्रतिस्पर्धा के कारण आज का युवा शिक्षित होते हुए भी बेरोजगारी की समस्या से जूझ रहा है। उसकी शिक्षा के अनुरूप उसे रोजगार उपलब्ध न होने से उसमें हीन भावना घर करती जा रही हैं जिसके चलते वह विभिन्न प्रकार के अनैतिक कृत्यों जैसे नशा, चोरी, डकैती, धोखाधड़ी और आत्महत्या आदि कार्यों में लिप्त होता जा रहा है। यह आज की ज्वलंत समस्या है। इसका बड़ा कारण है बढ़ती हुई जनसंख्या। शिक्षा के प्रचार प्रसार द्वारा ही इस पर रोक लगाई जा सकती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि किशोरावस्था में बालक–बालिकाओं को नित नयी–नयी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन समस्याओं का यदि मनोवैज्ञानिक हल निकाला जावे तो हमें सहज ही किशोरों द्वारा उत्पन्न समस्याओं का समाधान मिल जायेगा।

शोधार्थी द्वारा इन्हीं समस्याओं को ध्यान में रखकर शोधकार्य हेतु इस समस्या का चयन किया गया है ताकि किशोरों की समस्याओं से अवगत होकर उनके निवारण हेतु उचित मार्गदर्शन प्रदान किया जा सके।

1.2 समस्या कथन
(Statement of the Problem)

इस पृथ्वी पर सभी प्राणियों में मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जिसकी आवश्यकतायें असीमित है। हमेशा एक आवश्यकता पूरी होने के बाद दूसरी आवश्यकता जन्म ले लेती है और आवश्यकता की पूर्ति न होने की अवस्था में समस्या का उदय होता है।

मानव अपनी आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिये अनेक साधनों को अपनाता है और उसकी एक आवश्कता की संतुष्टि होने के बाद दूसरी आवश्यकता जन्म लेती है। इस प्रकार उसकी आवश्यकतायें निरंतर जन्म लेती रहती हैं ओर मनुष्य उनका समाधान करने के लिये अनुसंधान करता रहता है।

अतः स्पष्ट है कि आवश्यकता की संतुष्टि के मार्ग में उपस्थित बाधा ही समस्या है। समस्या की गंभीरता, आवश्यकता की गहनता और साधनों की उपलब्धि पर निर्भर होती है। इस प्रकार आवश्यकता जितनी अधिक प्रबल होगी, अवरोध जितना तीव्र होगा, समस्या उतनी ही गंभीर होगी।

फ्रेण्ड एन. करलिंगर के अनुसार, **''समस्या एक प्रश्नवाचक वाक्य या निवारण है जिसमें दो या दो से अधिक चर राशियों में सह संबंध को ज्ञात किया जाता है।''**

अतः समस्या की गंभीरता को देखते हुए किशोरावस्था के सामाजिक एवं शैक्षिक समस्याओं सम्बन्धी अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए इस विषय पर शोध–प्रबंध की आवश्यकता का अनुभव हुआ।

''उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की किशोरावस्था से सम्बन्धित शैक्षिक एवं सामाजिक समस्याओं का अध्ययन''

(शिवपुरी जिले के विशेष सन्दर्भ में)

1.3 शोध के उद्देश्य (Objectives of the Research)

हमारा मानव समाज विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु सदैव प्रयत्नशील रहता है। विश्व में कोई क्रिया बिना उद्देश्य के नहीं होती है। लक्ष्य विहीन प्रयासों के परिणाम निरर्थक होते हैं। अनुसंधान का मुख्य उद्देश्य वैज्ञानिक विधियों द्वारा विशिष्ट प्रश्नों का उत्तर अथवा विशिष्ट समस्याओं का समाधान प्राप्त करना है।

किशोरावस्था को मानव जीवन का सबसे कठिन समय माना जाता है, इस अवस्था में किशोरों के मन में अनेक प्रकार की समस्यायें उठती हैं, तरह–तरह के तूफान उठते हैं, क्योंकि वह अपने आपको पूर्ण वयस्क समझने लगते हैं। जबकि वयस्क उनको बालक ही समझते हैं। इस कारण उनके बीच अंतर्द्वन्द की स्थिति बनी रहती है। इस अंतर्द्वन्द से बचाने के लिये उनके साथ मित्रवत् व्यवहार करते हुए उनकी समस्याओं को समझते हुए समाधान की कोशिश होनी चाहिये।

किसी भी शोध प्रबन्ध को प्रस्तुत करने हेतु यह अत्यंत आवश्यक हो जाता है कि उस कार्य के उद्देश्य क्या हैं, उद्देश्य के बिना शोधकार्य व्यर्थ और निरर्थक सिद्ध हो जाता है।

अतः प्रस्तुत शोध को करते हुए निम्नलिखित उद्देश्यों को ध्यान में रखा गया है –

(1) किशोरावस्था के विद्यार्थियों की शैक्षिक समस्याओं पर उनके शैक्षिक वातावरण के प्रभाव का अध्ययन करना।

(a) शहरी शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् किशोरावस्था के विद्यार्थियों की शैक्षिक समस्याओं पर उनके शैक्षिक वातावरण के प्रभाव का अध्ययन करना।

(b) शहरी अशासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् किशोरावस्था के विद्यार्थियों की शैक्षिक समस्याओं पर उनके शैक्षिक वातावरण के प्रभाव का अध्ययन करना।

(c) ग्रामीण शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् किशोरावस्था के विद्यार्थियों की शैक्षिक समस्याओं पर उनके शैक्षिक वातावरण के प्रभाव का अध्ययन करना।

(d) ग्रामीण अशासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् किशोरावस्था के विद्यार्थियों की शैक्षिक समस्याओं पर उनके शैक्षिक वातावरण के प्रभाव का अध्ययन करना।

(2) किशोरावस्था के विद्यार्थियों की सामाजिक समस्याओं पर उनके सामाजिक वातावरण के प्रभाव का अध्ययन करना।

(a) शहरी शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् किशोरावस्था के विद्यार्थियों की सामाजिक समस्याओं पर उनके सामाजिक वातावरण के प्रभाव का अध्ययन करना।

(b) शहरी अशासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् किशोरावस्था के विद्यार्थियों की सामाजिक समस्याओं पर उनके सामाजिक वातावरण के प्रभाव का अध्ययन करना।

(c) ग्रामीण शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् किशोरावस्था के विद्यार्थियों की सामाजिक समस्याओं पर उनके सामाजिक वातावरण के प्रभाव का अध्ययन करना।

(d) ग्रामीण अशासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् किशोरावस्था के विद्यार्थियों की सामाजिक समस्याओं पर उनके सामाजिक वातावरण के प्रभाव का अध्ययन करना।

(3) किशोरावस्था के विद्यार्थियों की शैक्षिक एवं सामाजिक समस्याओं के निवारण हेतु उचित समाधान खोजना।

1.4 परिकल्पनाएँ (Hypothesis)

परिकल्पना को अंग्रेजी में (Hypothesis) कहते हैं जो दो शब्दों हाइपो (Hypo) + थीसिस (Thesis) से बना है। हाइपों का अर्थ होता है समस्या के समाधान का कथन। (Hypothesis) का शाब्दिक अर्थ उस समय सम्भावित प्रस्तुत करता है। परिकल्पना ऐसे समाधान को प्रस्तुत करती है जिसकी पुष्टि प्रदत्तों के आधार पर की जाती है।

परिकल्पना शोध समस्या का सम्भावित समाधान होता है। ये अनुसंधान पथ में **प्रकाश स्तम्भ** का कार्य करती हैं। परिकल्पना शब्द का अर्थ एक उपकथन होता है, जो समस्या समाधान की अवधारणा है।

परिकल्पना को अंग्रेजी में "**Hypothesis**" कहते है, जो दो शब्दो से मिलकर बना है। Hypo + Thesis, Hypo का अर्थ है – संभावित या जिसकी पुष्टि की जाये तथा Thesis का अर्थ है – समस्या के समाधान का कथन।[13]

परिकल्पना अंग्रेजी भाषा के शब्द "हाईपोथिसिस" (Hypothis) का हिन्दी रूपान्तर है। जिसका अर्थ है ऐसी मान्यता (thesis) जो अभी अपुष्ट (Hypo) है।

परिकल्पना से तात्पर्य **पूर्व चिंतन** से है अर्थात् किसी समस्या के हल के बारे में पहले से अनुमान लगाना।

परिकल्पना का अर्थ है कि किसी समस्या के विश्लेषण और परिभाषीकरण के पश्चात् पूर्व चिंतन कर लिया गया है कि इस समस्या का क्या कारण हो सकता है। जब किसी व्यक्ति के समक्ष कोई समस्या उत्पन्न होती है तो वह उसके निवारण के उपाय भी सोचने लगता है। फलस्वरूप जो उपाय उसके मस्तिष्क में आते हैं, वे ही समस्या के सम्भावित समाधान होते हैं। यह दूसरी बात है, कि वे बाद में सत्य सिद्ध हों अथवा नहीं।

परिकल्पनायें अनुसंधान को सही दिशा प्रदान करती हैं। इनके द्वारा अनुसंधान समस्या को हल करने में सहायता मिलती है क्योंकि परिकल्पना अनुसंधान समस्या का एक काल्पनिक समाधान होतीं हैं जिनको आधार मानकर ही

अनुसंधानकर्ता समस्या समाधान की ओर आगे बढ़ता है। अनुसंधान प्रक्रम में समस्या कथन के तुरन्त पश्चात् एक उपयुक्त परिकल्पना की आवश्यकता होती है।

परिकल्पनायें शोधकर्ता की आँखें होती हैं जिनके द्वारा वह समस्यागत अव्यवस्था (अव्यवस्थित तथ्यों) में झाँककर देखता है तथा उनमें समस्या का समाधान खोजता है।

परिकल्पना को **सम्भावित समाधान** या सिद्धांत भी कहा जाता है। इस कथन को अस्थाई रूप से सही मानकर शोधार्थी द्वारा इसकी पुष्टि का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार परिकल्पना किसी शोध कार्य के लिये दिशा तथा आधार प्रदान करती है।

परिकल्पना की अनेकों परिभाषायें दी गई हैं किन्तु उनमें से कुछ महत्वपूर्ण परिभाषायें इस प्रकार हैं –

- **गुड और हैट (1952)**[14] के अनुसार, **"परिकल्पना यह बताती है कि हमें क्या खोज करनी है। परिकल्पना भविष्य की ओर देखती है। यह एक तर्कपूर्ण वाक्य होता है, जिसकी वैधता की परीक्षा की जा सकती है। यह परीक्षा में सत्य भी सिद्ध हो सकती है और असत्य भी सिद्ध हो सकती है।''**
- **एडवर्ड (1959)**[15] के अनुसार, **"परिकल्पना दो या दो से अधिक चरों के सम्भावित सम्बन्ध के विषय में कथन होता है। यह प्रश्न का ऐसा सम्भावित उत्तर है जिससे चरों के सम्बन्ध का पता चलता है।"**
- **जेम्स ई. ग्रीटन**[16] के अनुसार, **"परिकल्पना सम्भावित माना हुआ समस्या का हल होता है जिसकी व्याख्या उस परिस्थिति से निरीक्षण के आधार पर की जा सकती है।"**
- **ब्रूश डब्ल्यू टकमन**[17] के अनुसार, **"परिकल्पना की परिभाषा अपेक्षित घटना के रूप में की जा सकती है जो चरों के माने हुए सम्बन्ध का सामान्यीकरण होता है।"**

- **जॉन डब्ल्यू बेस्ट**[18] के अनुसार, **"परिकल्पना एक विचारयुक्त कथन है जिसका प्रतिपादन किया जाता है और अस्थायी रूप से सही मान लिया जाता है और निरीक्षण प्रदत्तों के आधार पर व्याख्या की जाती है जो शोध कार्यों को निर्देशन देता है।"**
- **लुण्डबर्ग**[19] के अनुसार, **"परिकल्पना एक सम्भावित सामान्यीकरण होता है जिसकी वैद्यता की जाँच की जाती है। इसकी प्राथमिक अवस्था एक काल्पनिक समाधान के रूप में होती है जो बाद में शोध कार्यों का आधार हो जाता है।"**
- **टाउनसेण्ड**[20] के अनुसार, **"परिकल्पना अनुसंधान की समस्या के लिए सुझाया गया उत्तर है।"**
- **करलिंगर**[21] के अनुसार, **"परिकल्पना दो या दो से अधिक राशियों अथवा चरों के सम्बन्धों का कथन है।"**

शोधकर्ता अपने शोध विषय में प्रारम्भ से ही जिज्ञासा लिए होता है, कुछ ऐसी बातें होती हैं, जिनके बारे में जानना शोधकर्ता का उद्देश्य होता है। अतः परिकल्पना अनुसंधान की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। कहा भी गया है कि परिकल्पना एक प्रकाश स्तम्भ के समान होती है जो शोधकर्ता को मार्गदर्शक के रूप में सहायक होती है। इससे शोधकर्ता को ज्ञात होता है कि वह किस प्रकार की खोज कर रहा है। यह कहना उचित होगा कि, **''परिकल्पना विहीन शोध, पतवार विहीन जहाज की भाँति है।''** शोधकर्ता को शोध से पूर्व परिकल्पना बनाना आवश्यक है अन्यथा शोधकार्य सम्भव न हो सकेगा।

❖ परिकल्पना की मुख्य विशेषतायें :

1. परिकल्पना परीक्षण योग्य होनी चाहिए।
2. परिकल्पना समस्या का स्पष्ट उत्तर होनी चाहिए।
3. परिकल्पना में तर्कसंगत सरलता होनी चाहिए।
4. परिकल्पना अल्पव्ययी होनी चाहिए।
5. परिकल्पना मात्रात्मक मापन योग्य होनी चाहिए।

6. परिकल्पना की अन्य परिकल्पनाओं से संगति होनी चाहिए।

7. परिकल्पना में स्वीकृति और अस्वीकृति की समान संभावना होनी चाहिए।

8. परिकल्पना अनुसंधान के लिये दिशा निर्देश देती है।

9. परिकल्पना अनुभव सिद्ध साधन प्रस्तुत करती है।

10. परिकल्पना भविष्य कथन करने में समर्थ होती है।

❖ **परिकल्पनाओं के लाभ :**

शोध में परिकल्पनाओं से अनुसंधानकर्ता को निश्चय ही अनेक लाभ प्राप्त होते हैं। ये निम्न है :–

1. परिणामों की पूर्व भविष्यवाणी मात्र परिकल्पनाओं की सहायता से ही की जा सकती है।

2. अनुसंधान को भविष्य कथन में अनुसंधान के उपकरण एकत्रित करने तथा समंक संकलन में सहायता प्राप्त होती है।

3. परिकल्पनाओं से समंक विश्लेषण तथा परिणामों के प्रतिवेदन के लिए ढांचा तैयार करने में सहायता प्राप्त होती है।

4. परिकल्पनाओं के माध्यम से अनुसंधानकर्ता को सांख्यिकीय विश्लेषण की सरंचना में सहायता प्राप्त होती है।

5. यह अनुसंधानकर्ता को एक उचित मार्ग दिखाती है।

❖ **परिकल्पना के उद्देश्य (Purposes of Hypothesis) :** जार्ज. जे. मुले ने परिकल्पना के अनेक उद्देश्यों का वर्णन किया है, जो निम्न है :–

1. परिकल्पना अनुसंधान के लिए दिशा प्रदान करती है तथा अनावश्यक साहित्य अध्ययन से भी बचाती है।

2. यह उपयोगी समंकों के संकलन में सहायक होती है।

3. अनुसंधानकर्ता को परिकल्पनाएँ संवेदनशील बनाती हैं, जिससे कि वह अनावश्यक समंकों के संकलन से बच जाता है।

4. परिकल्पना से समस्या का रूप स्पष्ट हो जाता है।

5. अनुसंधान के निष्कर्षों के प्रतिपादन में परिकल्पना से सहायता प्राप्त होती है।

❖ परिकल्पनाओं के प्रकार[22] :

परिकल्पना के प्रकार के सम्बन्ध में कोई एक निश्चित वर्गीकरण नहीं है। विभिन्न विद्वानों ने परिकल्पना के प्रकार को अपने–अपने ढंग से वर्गीकृत किया है।

(1) धनात्मक परिकल्पना (2) ऋणात्मक परिकल्पना (3) शून्य परिकल्पना

(1) धनात्मक परिकल्पना

यह परिकल्पना प्रायोगिक परिकल्पना का एक प्रकार है। यह परिकल्पना दो या दो से अधिक चरों या दो या दो से अधिक समूहों के अन्तर के सम्बन्ध में होती है। इस प्रकार की परिकल्पना में कथन का रूप धनात्मक होता है।

उदाहरण – ''छात्रायें, छात्रों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान हैं।''

इस प्रकार की परिकल्पना में एक समूह की अपेक्षा दूसरे को अधिक योग्य, अधिक निष्पादन वाला या श्रेष्ठ कहा जाता है। इस प्रकार दो समूहों के अन्तर को धनात्मक दिशा में परिकल्पना द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है।

(2) ऋणात्मक परिकल्पना

यह परिकल्पना प्रायोगिक परिकल्पना का दूसरा प्रकार है। यह परिकल्पना दो या दो से अधिक चरों या दो या दो से अधिक समूहों के अन्तर के सम्बन्ध में होती है। इस प्रकार की परिकल्पना में कथन का स्वरूप ऋणात्मक होता है।

उदाहरण – ''छात्रायें, छात्रों की अपेक्षा कम बुद्धिमान होती हैं।''

इस प्रकार की परिकल्पना में एक समूह को दूसरे समूह की अपेक्षा कम योग्य, कम निष्पादन वाला या हीन कहा जाता है। इस प्रकार के कथन द्वारा दो समूहों के अन्तर को ऋणात्मक दिशा में परिकल्पना द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है।

(3) शून्य परिकल्पना

इस प्रकार की उपकल्पना या परिकल्पना की धारणा होती है कि स्वतंत्र चर के अभाव के कारण दो या दो से अधिक समूहों में कोई वास्तविक अन्तर नहीं होता है। वह जब तक संदेह से परे सिद्ध नहीं किया जाता, सार्थक नहीं माना जा सकता।

"Null" जर्मन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ ''शून्य'' है। शून्य परिकल्पना में शोधकर्ता यह मानकर चलता है कि जिन दो चरों में सम्बन्ध ज्ञात किया जा रहा है, उनमें कोई अन्तर नहीं है अर्थात् इस प्रकार की परिकल्पना को नकारात्मक रूप में विकसित किया जाता है। चरों के सह–सम्बन्ध तथा चरों के अन्तर को नकारात्मक रूप में प्रगट किया जाता है। इस प्रकार की परिकल्पना की विशेषता यह है कि इसके लिये कोई सैद्धांतिक आधार प्रस्तुत नहीं करना होता है। इसको विकसित करना सरल होता है।

❖ शून्य परिकल्पना[23]:

गैरेट (1973) के अनुसार – **''शून्य उपकल्पना की यह मान्यता है कि समष्टि के दो न्यादर्श मध्यमानों में सत्य अन्तर नहीं है और यदि न्यादर्श मध्यमानों में कोई अन्तर है तो यह अन्तर संयोगजन्य है और महत्वपूर्ण नहीं है।''**

जे.पी. गिलफोर्ड (1973) के अनुसार – **''शून्य परिकल्पना यह बताती है कि प्रायोगिक परिस्थिति में या अप्रायोगिक परिस्थिति में जिन घटनाओं का मापन किया जाता है। उनके विषय में यह मान्यता रहती है कि इन सबका विशेष कारण कुछ नहीं है बल्कि स्वतंत्र या बन्धन मुक्त संयोग के नियमों के प्रभाव के कारण ही है।''**

शून्य परिकल्पना का संकेत चिन्ह H_o है। इस परिकल्पना के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार से हैं –

- समूह अ और समूह ब की बुद्धि में कोई अन्तर नहीं है।
- एक समूह के पुरुषों की बुद्धि के मध्यमान और दूसरे समूह की स्त्रियों की बुद्धि के मध्यमान में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

- शहरी और ग्रामीण क्षेत्र की छात्राओं के संवेगात्मक समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- बुद्धि तथा निष्पत्ति में सहसम्बन्ध नहीं होता है।

❖ शून्य परिकल्पना की प्रमुख विशेषतायें :

- वैज्ञानिक शोध में इस प्रकार की परिकल्पना की जाँच करना सबसे सरल होता है और यह जाँच श्रेष्ठ होती है।
- शून्य परिकल्पना निर्देश रहित होती है। इस परिकल्पना की जाँच में शोधार्थी इस परिकल्पना को स्वीकार या अस्वीकार करने के लिये बाध्य नहीं होता है।
- इस परिकल्पना की सहायता से दो समूहों के मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता की जाँच वैज्ञानिक ढंग से की जा सकती है। दोनों समूहों के मध्यमानों का अन्तर धनात्मक भी हो सकता है और ऋणात्मक भी हो सकता है।
- इस परिकल्पना में अन्तर की सार्थकता की जाँच बहुधा द्वि–पक्षीय परीक्षण द्वारा करते हैं अर्थात् दोनों सम्भावनाओं का समान महत्व है। इस कारण इस परिकल्पना को वैज्ञानिक दृष्टि से श्रेष्ठ माना जाता है।
- शून्य परिकल्पना उस समय सत्य रहती है जब दो समूहों के मध्यमानों में अन्तर सार्थक नहीं होता है।
- शून्य परिकल्पना इस प्रकार भी बनायी जा सकती है कि दो समूहों के मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता की जाँच एक पक्षीय परीक्षण द्वारा हो अर्थात धनात्मक पक्ष की ओर हो या ऋणात्मक पक्ष की ओर हो।

इस परिकल्पना की सहायता से दो न्यादर्शों के मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता की जाँच की जाती है परन्तु न्यादर्श का मध्यमान कम है या अधिक इस ओर ध्यान नहीं दिया जाता है। मध्यमानों का अन्तर धनात्मक या ऋणात्मक दोनों हो सकता है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधार्थी ने उपर्युक्त विभिन्न तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुये शोध को सही दिशा प्रदान करने हेतु अपने शोधकार्य में परिकल्पनाओं के विभिन्न प्रकारों में से **शून्य परिकल्पना** का चुनाव किया है।

शोधार्थी द्वारा शोध समस्या को दृष्टिगत रखते हुये निम्नलिखित परिकल्पनायें प्रस्तावित हैं –

(1) किशोरावस्था के विद्यार्थियों की शैक्षिक समस्याओं पर उनके शैक्षिक वातावरण का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता।

(a) शहरी शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् किशोरावस्था के विद्यार्थियों की शैक्षिक समस्याओं पर उनके शैक्षिक वातावरण का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता।

(b) शहरी अशासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् किशोरावस्था के विद्यार्थियों की शैक्षिक समस्याओं पर उनके शैक्षिक वातावरण का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता।

(c) ग्रामीण शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् किशोरावस्था के विद्यार्थियों की शैक्षिक समस्याओं पर उनके शैक्षिक वातावरण का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता।

(d) ग्रामीण अशासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् किशोरावस्था के विद्यार्थियों की शैक्षिक समस्याओं पर उनके शैक्षिक वातावरण का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता।

(2) किशोरावस्था के विद्यार्थियों की सामाजिक समस्याओं पर उनके सामाजिक वातावरण का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता।

(a) शहरी शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् किशोरावस्था के विद्यार्थियों की सामाजिक समस्याओं पर उनके सामाजिक वातावरण का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता।

(b) शहरी अशासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् किशोरावस्था के विद्यार्थियों की सामाजिक समस्याओं पर उनके सामाजिक वातावरण का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता।

(c) ग्रामीण शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् किशोरावस्था के विद्यार्थियों की सामाजिक समस्याओं पर उनके सामाजिक वातावरण का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता।

(d) ग्रामीण अशासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् किशोरावस्था के विद्यार्थियों की सामाजिक समस्याओं पर उनके सामाजिक वातावरण का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता।

(3) किशोरावस्था के विद्यार्थियों की शैक्षिक एवं सामाजिक समस्याओं का निराकरण उचित मार्गदर्शन द्वारा सम्भव है।

1.5 शोध में प्रयुक्त चर :

अनुसंधान कार्य में घटना का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निरीक्षण करने वाले व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारकों को चर कहते हैं।

करलिंगर[24] के अनुसार, **''चर एक ऐसी विशेषतायें तथा गुण होते हैं जिसमें मात्रात्मक विभिन्नतायें स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती हैं तथा जिनमें किसी एक आयाम पर परिवर्तन होते रहते हैं।''**

प्रस्तुत शोध में निम्नलिखित चरों का अध्ययन किया गया है –

(i) स्वतंत्र चर :

टाउनसेण्ड[25] के अनुसार – **''स्वतंत्र चर वह राशि है जिसे प्रयोगकर्ता किसी निरीक्षित घटना से सम्बन्धित करने के लिये घटाता बढ़ाता है।''**

क्षेत्र – ग्रामीण एवं शहरी

वातावरण – सामाजिक एवं शैक्षिक

(ii) आश्रित चर :

टाउनसेण्ड[26] के अनुसार – **''आश्रित चर वह चल राशि है जो प्रयोगकर्ता द्वारा स्वतंत्र चर के प्रदर्शन पर प्रदर्शित हो, हटाने पर अदृश्य हो तथा मात्रा के परिवर्तित होने पर परिवर्तित हो जाये।''**

समस्यायें – सामाजिक समस्यायें एवं शैक्षिक समस्यायें

1.6 न्यादर्श (Sample)

जब किसी जनसंख्या या समष्टि (इकाई, वस्तुओं या मनुष्यों का समूह) में किसी चर का विशिष्ट मान ज्ञात करने के लिये शोधकर्ता द्वारा उसकी कुछेक इकाइयों को चुना जाता है, तो इस चुनने की प्रक्रिया को **'न्यादर्शन'** कहते हैं तथा चुनी हुई इकाई के समूह को **'न्यादर्श'** कहते हैं।

व्यावहारिक तथा सामाजिक विषयों के शोध कार्यों में न्यादर्श का विशेष महत्व होता है। इसके बिना शोध कार्यों को पूरा नहीं किया जा सकता है क्योंकि सम्पूर्ण जनसंख्या का अध्ययन कठिन होता है तथा कभी–कभी असम्भव भी होता है। अतः न्यादर्श सम्पूर्ण जनसंख्या का वह अंश होता है जिसमें अपनी समष्टि की समस्त विशेषताओं का प्रतिबिम्ब रहता है। न्यादर्श का तात्पर्य सम्पूर्ण जनसंख्या से अध्ययन के लिये एक ऐसी इकाई को पृथक करना है जो सम्पूर्ण का प्रतिनिधित्व करती है तथा सम्पूर्ण की अपेक्षा छोटी है।

न्यादर्श प्रविधि शोध कार्य को व्यावहारिक तथा समय, धन, शक्ति की दृष्टि से मितव्ययी बना देती है। न्यादर्श के प्रयोग से शोध परिणामों को और अधिक शुद्ध एवं मितव्ययी बनाया जाता है।

अनुसंधान तथा शोध के प्रयोग का प्रारूप न्यादर्श की प्रविधि पर आधारित होता है। एक उत्तम प्रकार के शोध कार्य में न्यादर्श तथा उसकी जनसंख्या सम्बन्धी समस्त सूचनाओं को दिया जाता है। एक शुद्ध रूप से प्रतिनिधित्व करने वाले न्यादर्श से शोध के सामान्यीकरण के बारे में अधिक से अधिक सूचनायें प्राप्त की जा सकती हैं।

- **गुड एण्ड हैट (1960)**[27] के अनुसार – **''प्रतिदर्श जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, कि यह विस्तृत समूह का एक छोटा प्रतिनिधि है।''**
- **पी.वी. यंग**[28] के अनुसार – **''एक सांख्यिकीय न्यादर्श का एक निम्नतम आकार या सम्पूर्ण समूह अथवा योग का एक अंश है जिससे न्यादर्श को लिया गया है।''**

- **फ्रैंक येट्स[29]** के अनुसार – **''न्यादर्श शब्द इकाइयों के एक समूह या सम्पूर्ण सामग्री के एक अंश के लिये सुरक्षित होना चाहिए, जिसको इस विश्वास के ऊपर चुना गया है कि वह सम्पूर्ण का प्रतिनिधि होगा।''**

  "The term sample should be reserved for a set of units or portion of an aggregate of material which has been selected in the belief that it will be representative of the whole aggregate." - Franke Yate

- **गुड एवं हैट[30]** के अनुसार– **''एक न्यादर्श जैसा कि नाम स्पष्ट करता है, सम्पूर्ण समूह का एक निम्नतम प्रतिनिधित्व है।''**

  "A sample as a name applies is a smaller representation of a larger whole."

  -- Good and Hatt

- **पी.वी. यंग[31]** के अनुसार– **''एक सांख्यिकीय न्यादर्श एक निम्नतम आकार या सम्पूर्ण समूह अथवा योग का एक अंश है जिससे न्यादर्श को लिया गया है।''**

  "A statistical sample is a miniature picture of cross section of the entire group or aggrequate from which the sample is taken." -- P.V. Young

- **वोगार्ड्स (1954)[32]** के अनुसार – **प्रतिदर्श एक निर्धारित योजना के अनुसार इकाईयों के एक समूह में से निश्चित प्रतिशत में इकाईयों का चयन है।''**

- **डब्ल्यू जी. कोकरन[33]** के अनुसार – **प्रत्येक विज्ञान की शाखा में हमारे साधन सीमित हैं। इसलिये सम्पूर्ण तथ्य के एक अंश से अधिक का अध्ययन नहीं कर पाते तथा उसके बारे में ज्ञान प्रस्तुत किया जाता है।**

न्यादर्श पद्धति अनुसंधान की वह पद्धति है जिसमें अनुसंधान विषय के अन्तर्गत सम्पूर्ण जनसंख्या से सावधानीपूर्वक कुछ इकाईयों को चुना जाता है जो सम्पूर्ण जनसंख्या की आधारभूत विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। जिस प्रकार केवल कुछ पौंड कोयले की जाँच के आधार पर एक गाड़ी कोयला स्वीकृत या अस्वीकृत कर दिया जाता है केवल एक बूँद रक्त की जाँच करने से एक रोगी के रक्त के विषय में चिकित्सक निष्कर्ष निकालता है ठीक इसी प्रकार न्यादर्श ऐसी

युक्ति है जिसके द्वारा केवल कुछ इकाईयों का निरीक्षण करके वृहद मात्राओं के बारे में जाना जा सकता है।

डैमिंग[34] के अनुसार – **''प्रतिचयन सम्पूर्ण अध्ययन क्षेत्र का केवल एक अंश मात्र ही नहीं है, बल्कि यह वह विज्ञान या कला है, जिसकी सहायता से उपयोग में लाये जाने वाले आँकड़ों की विश्वसनीयता को प्रसम्भाव्यता सिद्धान्त के द्वारा नियंत्रण में रखा जा सकता है तथा उसका मापन भी किया जा सकता है।**

न्यादर्श चुनने की विधि को न्यादर्शन या प्रतिचयन कहते हैं।

❖ न्यादर्श चयन की आवश्यकता[35] :

1. **समय की बचत**–सम्पूर्ण जनसंख्या पर परीक्षण करने में अधिक समय लगता है।
2. **धन की बचत**–सम्पूर्ण जनसंख्या पर परीक्षण करने में अधिक धन व्यय होता है।
3. **अधिक सत्यता का ज्ञान**–जब हम सम्पूर्ण जनसंख्या पर परीक्षण करते हैं, तो उनसे प्राप्त परिणामों में अधिक त्रुटियों की सम्भावना रहती है।
4. **प्रशासकीय सुविधाएँ**–परीक्षण को सम्पूर्ण जनसंख्या पर प्रशासित करने में अनेक असुविधाओं का सामना करना पड़ता है।
5. **विस्तृत जानकारी**–न्यादर्श द्वारा किसी विषय की जानकारी अधिक विस्तृत एवं ठोस रूप में प्राप्त होती है।
6. **सम्पूर्ण जनसंख्या का अध्ययन असंभव**–किसी सम्पूर्ण जाति, समाज या जनसंख्या का अध्ययन करना अत्यंत कठिन ही नहीं वरन् असंभव है क्योंकि समाज के प्रत्येक व्यक्ति से सम्पर्क करना और उनका अध्ययन करना असंभव है। न्यादर्श से यह कठिनाई दूर हो जाती है।
7. **विश्वसनीयता**–सम्पूर्ण जनसंख्या का अध्ययन करने पर प्राप्त परिणामों में विश्वसनीयता का पाया जाना कठिन है किन्तु न्यादर्श द्वारा अध्ययन करने पर प्राप्त परिणामों में विश्वसनीयता की संभावना अधिक रहती है।

❖ न्यादर्श की विशेषतायें :

अच्छे न्यादर्श की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए ही शोधार्थी को न्यादर्श का चयन करना चाहिये जिससे कि चुने गये न्यादर्श में अच्छे न्यादर्श की सभी विशेषतायें हों। अच्छे न्यादर्श पर किये गये अध्ययन से शुद्ध और विश्वसनीय परिणाम प्राप्त होते हैं। अच्छे न्यादर्श की कुछ प्रमुख विशेषतायें निम्नानुसार हैं–

- **समग्र का प्रतिनिधित्व :** एक अच्छे न्यादर्श में आवश्यक है कि वह समग्र (जनसंख्या) का सही रूप में प्रतिनिधित्व करे।
- **निष्पक्षता :** न्यादर्श में इकाईयों का चयन बिना किसी पक्षपात के होना चाहिये। न्यादर्श चयन पर शोधकर्ता की रुचि या स्वेच्छा का कोई प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए।
- **साधनों के अनुरूप :** न्यादर्श साधनों को ध्यान में रखकर चुनना चाहिये। साधनों को ध्यान में न रखने पर शोध कार्य अधूरा रह सकता है।
- **न्यादर्श का पर्याप्त आधार :** अच्छे न्यादर्श के लिये यह आवश्यक है कि उसका आकार पर्याप्त बड़ा हो। न्यादर्श में जितनी अधिक इकाईयों की संख्या होगी, परिणाम उतने ही अधिक वैध और विश्वसनीय होंगे।
- **उच्च विश्वसनीयता स्तर :** अच्छा न्यादर्श इतना विश्वसनीय होना चाहिए कि न्यादर्श के अध्ययन से वही परिणाम प्राप्त हों जो समष्टि के अध्ययन से प्राप्त होते हैं।
- **तर्क पर आधारित :** न्यादर्श को तकनीकी व तर्क की कसौटी पर खरा होना चाहिए।
- **उद्देश्य के अनुरूप :** अच्छे न्यादर्श के लिये आवश्यक है कि उसका चयन उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया जाये।
- **व्यवहारिक अनुभवों पर आधारित :** न्यादर्श चयन में व्यवहारिक अनुभवों, अन्य विद्वानों का लाभ लेने से प्रतिचयन त्रुटि रहित होता है।

❖ न्यादर्श चयन की विधियाँ :

न्यादर्श में प्रतिनिधित्व एवं पर्याप्तता का गुण होने के लिये न्यादर्शन की क्रिया को विशिष्ट विधियों द्वारा करना चाहिये। न्यादर्श की परिशुद्धता, जनसंख्या सम्बन्धी हमारे ज्ञान पर या उस विधि पर निर्भर करती है जिससे न्यादर्श चुना गया है। न्यादर्श चयन विधियों को मुख्य रूप से निम्न दो भागों में बाँटा जा सकता है :–

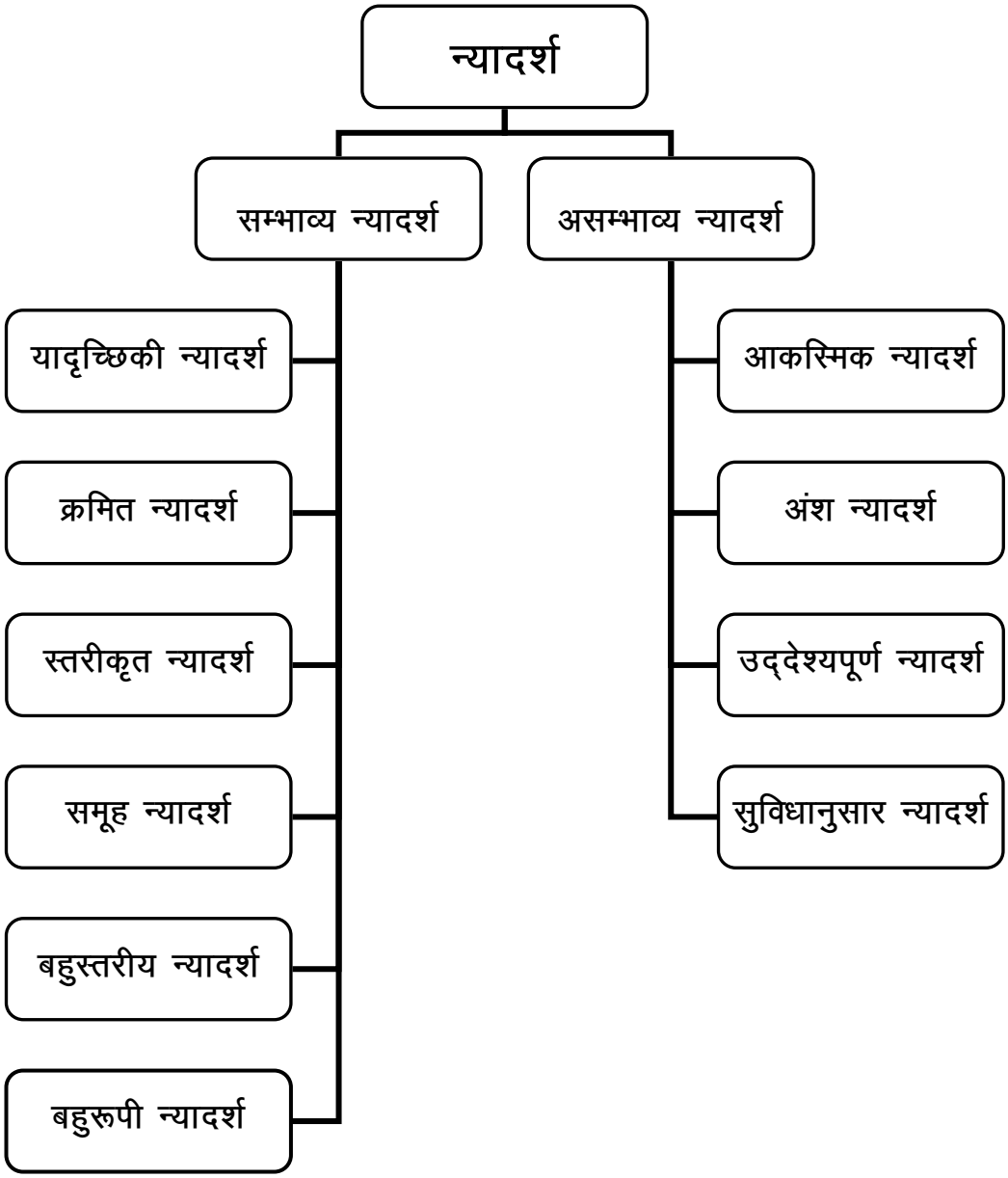

रेखाचित्र क्रमांक–1

(i) सम्भाव्य न्यादर्श विधि :

न्यादर्श के चयन में जब ऐसी विधि का प्रयोग करते हैं जिसमें जनसंख्या के प्रत्येक सदस्य के प्रतिनिधित्व की सम्भावना होती है, तब उसे सम्भाव्य न्यादर्श की संज्ञा दी जाती है।

जी.सी. हेलमेस्टर[36] के अनुसार – **''सम्भाव्य न्यादर्श उसे कहते हैं, जिसमें जनसंख्या के प्रत्येक सदस्य को न्यादर्श में सम्मिलित होने या चयन किये जाने की समान सम्भावना होती है एक सदस्य का दूसरे पर कोई भी बंधन नहीं होता है। प्रत्येक सदस्य पूर्णरूप से स्वतन्त्र होता है।''**

❖ सम्भाव्य न्यादर्श की विशेषतायें :

इस प्रकार के न्यादर्श की निम्नलिखित विशेषतायें हैं –

- सम्भाव्य न्यादर्श में जनसंख्या के प्रत्येक सदस्य के चयन किये जाने की समान सम्भावना होती है।
- सम्भाव्य न्यादर्श जनसंख्या का अच्छा प्रतिनिधित्व करता है।
- सम्भाव्य न्यादर्श से एकत्रित किये गये प्राप्तांकों का वितरण सामान्य होता है।
- सामान्यीकरण हेतु सांख्यिकीय परीक्षणों का प्रयोग किया जा सकता है।
- सम्भाव्य न्यादर्श के आधार पर सामान्यीकरण किया जा सकता है।

❖ सम्भाव्य न्यादर्श के प्रकार :

(क) यादृच्छिक या संयोगिक या दैव न्यादर्श :

बी.जे. एन्ड्रीयॉज[37] के अनुसार – **''एक समष्टि का संयोगिक प्रतिचयन एक ऐसा समूह होता है, जिसके अन्तर्गत सम्बन्धित समष्टि की प्रत्येक इकाई के सम्मिलित किये जाने के समान अवसर होते हैं।''**

गुड और हैट[38] के अनुसार – **''समष्टि की सभी इकाईयों को इस प्रकार क्रमबद्ध किया जाना चाहिये जिससे समष्टि की सभी इकाईयों को चुनने की बराबर सम्भावना रहे।''**

उपरोक्त परिभाषाओं के अवलोकन से स्पष्ट है कि दैव या यादृच्छिक प्रतिचयन एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा न्यादर्श चुनते समय समष्टि की सभी इकाईयों के चुने जाने की समान सम्भावना या संयोग होता है।

इस प्रकार के न्यादर्शन की कुछ प्रमुख विधियाँ निम्न प्रकार हैं –

- सिक्का उछालकर
- पासा उछालकर
- लॉटरी विधि
- अन्य विधि

(ख) क्रमित न्यादर्श :

इस विधि में जनसंख्या की जानकारी आवश्यक होती है। इसमें सभी के नामों की सूची या तो वर्णमाला के अनुसार या अन्य विधि से तैयार कर लेते हैं। सभी एक ही विधि से लिखे जाते हैं। अब सूची में से एक क्रम से व्यक्ति अथवा इकाई को चयन करते जाते हैं।

(ग) स्तरीकृत या वर्गबद्ध न्यादर्श :

यह विधि उपरोक्त दोनों विधियों से उत्तम है। इसमें मानदण्ड के आधार पर जनसंख्या को वर्गीकृत कर देते हैं। अधिक योग्य एक वर्ग में कम योग्यता वाले अलग वर्ग में तथा मध्यम योग्यता वाले अलग वर्ग में, अब अलग–अलग वर्गों में से न्यादर्श के लिए इकाईयों का चयन कर लिया जाता है। अतः न्यादर्श में अधिक योग्यता वाली, मध्यम योग्यता वाली तथा कम योग्यता वाली सभी प्रकार की इकाईयों का समावेश हो जाता है।

(घ) **समूह न्यादर्श :** जब जनसंख्या अधिक विस्तृत हो तथा दूर–दूर तक फैली हुयी हो तो ऐसी स्थिति में उपरोक्त विधियों द्वारा अध्ययन करना सम्भव नहीं होता है। अतः इस जनसंख्या का एक बड़ा समूह बना लेते हैं। यह बड़े समूह (यादृच्छिक) अनियमित विधि द्वारा या वर्ग अनियमित विधि द्वारा बनाये जाते हैं। इस बड़े समूह को ही न्यादर्श मान लेते हैं, और इसे समूह न्यादर्श कहते हैं।

(ड़) **बहुस्तरीय न्यादर्श :** यह वर्गबद्ध का ही सुधरा हुआ रूप है। इसमें जनसंख्या के कई स्तर होते हैं। प्राथमिक स्तर, माध्यमिक स्तर आदि। ये स्तर एक – दूसरे में समावेशित रहते हैं।

(च) **बहुरूपी न्यादर्श :** इस विधि में दो अथवा दो से अधिक न्यादर्श का चयन करते हैं। इसलिए इसे बहुरूपी न्यादर्श कहते हैं।

(ii) **असम्भाव्य न्यादर्श :**

इस न्यादर्शन विधि में इकाईयों का चयन सम्भाव्यता सिद्धान्त पर आधारित नहीं होता, बल्कि अध्ययनकर्त्ता को इकाईयों के चयन में प्रायः स्वतन्त्रता रहती है। जब इकाईयों के चयन का आधार संयोग न रहकर सुविधा, अवसर, निर्णय आदि रहता है, तब ऐसे प्रतिचयन को असम्भाव्य प्रतिचयन कहते हैं अर्थात् इस विधि में शोधकर्ता अपनी सुविधा, साधन, समय, ज्ञान आदि तत्वों से प्रभावित होकर इकाईयों का चयन करता है। स्थानीय शोध कार्यों में इसका प्रयोग किया जाता है। इसमें सामान्यीकरण नहीं किया जाता है।

असम्भाव्य न्यादर्श के प्रकार :

(क) आकस्मिक न्यादर्श :

इस विधि का जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है कि उसी प्रकार की यह विधि भी है। इसमें समष्टि से जो व्यक्ति समय पर मिल जाते हैं या जो स्वयं सूचना देना चाहते हैं, उन्हें न्यादर्श की इकाई मानकर उनसे सूचना एकत्र कर लेते हैं। इस विधि में पहले से कोई योजना नहीं बनानी होती है। सामाजिक सर्वेक्षणों एवं अनुसंधानों में प्रायः इस विधि का प्रयोग किया जाता है।

(ख) अंश न्यादर्श :

इसे प्रतिनिधि न्यादर्श भी कहते हैं। इस विधि द्वारा न्यादर्श चुनते समय समष्टि को गुणों के आधार पर विभिन्न भागों या अंशों में विभाजित कर देते हैं। फिर गुणों के आधार पर विभिन्न भागों से आकस्मिक न्यादर्श विधि द्वारा न्यादर्श का चुनाव कर लेते हैं। इस प्रकार चुना हुआ न्यादर्श अंश कहलाता है।

(ग) उद्देश्यपूर्ण न्यादर्श :

जे.पी. गिल्फोर्ड[39] के अनुसार – **''उद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्श एक स्वेच्छानुसार चयन किया गया प्रतिदर्श होता है। इस संबंध में इस तथ्य का ठोस प्रमाण रहता है। ऐसा प्रतिदर्श सम्पूर्ण समष्टि का पूर्णरूपेण प्रतिनिधित्व करता है।''**

जब शोधार्थी अपने शोध के उद्देश्य के अनुसार पूर्ण जाति से इकाईयों का चुनाव करता है, तो प्राप्त न्यादर्श को उद्देश्यपूर्ण न्यादर्श कहा जाता है।

(घ) सुविधानुसार न्यादर्श :

जब अध्ययनकर्ता अपने अध्ययन में न्यादर्श की इकाईयों का चुनाव अपने अध्ययन की सुविधा के अनुसार करता है तो इस प्रकार के न्यादर्श को सुविधानुसार न्यादर्श कहते हैं। इस प्रकार के न्यादर्श में अध्ययनकर्त्ता न्यादर्श में केवल उन्हीं इकाईयों को सम्मिलित करता है जिनसे उसे अपनी समस्या के सम्बन्ध में आँकड़े एकत्र करने में सुविधा रहती है। जैसे – सहभाषी, सहधर्मी, सहजाति वाले या किसी अन्य प्रकार से परिचित व्यक्ति आदि से सुविधानुसार आँकड़े एकत्र करना। स्पष्ट है कि अध्ययनकर्त्ता को अध्ययन इकाईयों को चुनने में पूर्णतः छूट होती है, बहुधा यह देखा गया है कि जिन इकाईयों को अध्ययन में सम्मिलित करने में किसी भी प्रकार की कठिनाई होती है, उन्हें अध्ययनकर्त्ता को छोड़ने की पूरी सुविधा रहती है।

प्रस्तुत शोध कार्य में प्रतिदर्श के लिये म.प्र. राज्य के शिवपुरी जिले को चुना गया है। 8 ब्लॉकों के अन्तर्गत 20 विद्यालयों का चयन शोधकार्य हेतु किया

गया है। प्रत्येक विद्यालय से 25 विद्यार्थियों का चयन शोधकार्य हेतु किया गया है। इस प्रकार कुल 500 विद्यार्थियों का चयन किया गया है।

न्यादर्श चयन हेतु शोधकर्त्री द्वारा सरल यादृच्छिकीय विधि (Simple Random Method) का प्रयोग किया गया है, इसके अन्तर्गत शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों एवं विद्यार्थियों का चयन सिक्का उछाल विधि के आधार पर किया गया है।

न्यादर्श का विवरण

विद्यालय	विद्यालयों की संख्या	विद्यार्थियों की संख्या
शहरी शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय	05	125
शहरी अशासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय	05	125
ग्रामीण शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय	05	125
ग्रामीण अशासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय	05	125
योग :	**20**	**500**

1.7 परिसीमन

(Delimitation)

किसी भी समस्या का अध्ययन कितनी भी गहराई से क्यों न किया जाए लेकिन उसकी सीमायें निर्धारित करना अनिवार्य होता है ताकि शोधकर्ता अपने सम्पूर्ण विवेक एवं ज्ञान के द्वारा विषय का पूर्ण मंथन करके उपयोगी एवं महत्वपूर्ण सुझाव ज्ञात कर सके।

अतः उपर्युक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुये समय सीमा में कार्य निष्पादन की दृष्टि से प्रस्तुत समस्या का निम्नानुसार परिसीमन किया गया है :–

1. प्रस्तुत शोध कार्य शिवपुरी जिले तक सीमित है।
2. प्रस्तुत शोध कार्य हेतु शिवपुरी जिले के 20 उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों का चयन किया गया है।

3. 20 उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में 10 ग्रामीण क्षेत्र के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालय एवं 10 शहरी क्षेत्र के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालय चयनित किये गये हैं।

4. शहरी क्षेत्र को 10 किलोमीटर तथा ग्रामीण क्षेत्र को 100 किलोमीटर तक मान्य किया गया है।

5. मुख्यालय में 10 किलोमीटर तक शहरी क्षेत्र है जबकि ब्लॉक स्तर पर जहाँ–जहाँ जनसंख्या अधिक है, उन्हें शहरी मान्य किया गया है।

6. शहरी क्षेत्र से 5 शासकीय तथा 5 अशासकीय विद्यालय लिये गये हैं।

7. ग्रामीण क्षेत्र से भी 5 शासकीय तथा 5 अशासकीय विद्यालय लिये गये हैं।

8. प्रस्तुत अध्ययन में प्रत्येक शहरी शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों से 125–125 विद्यार्थियों का चयन किया गया है। इसी प्रकार ग्रामीण शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों से 125–125 विद्यार्थियों का चयन किया गया है।

9. प्रत्येक विद्यालय से 25–25 विद्यार्थियों का चयन किया गया है।

1.8 तकनीकी शब्दों का अर्थ एवं परिभाषा
(Definition of Technical Terms)

समस्या कथन में कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है जिसका बोध कराने से अध्ययन की रूपरेखा स्वतः ही स्पष्ट हो जाती है। अतः इस शोध कार्य में प्रयुक्त तकनीकी शब्दों का स्पष्टीकरण निम्नानुसार है :–

(1) **उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी :** म.प्र. शासन द्वारा संचालित कक्षा–9 से कक्षा–12 तक की कक्षाओं में पढ़ने वाले बालक एवं बालिकाओं को उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी सम्बोधित किया गया है। शोध कार्य हेतु शहरी एवं ग्रामीण, शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों का चयन किया गया है।

(2) **किशोरावस्था : ''किशोरावस्था वह समय है जिसमें विचारशील व्यक्ति बाल्यावस्था से परिपक्वता की ओर संक्रमण करता है।''**

– जरशील्ड

12 वर्ष से 18 वर्ष तक के बालक तथा बालिकाओं की अवस्था को किशोरावस्था के नाम से जाना जाता है।

(3) **शैक्षिक समस्यायें** : किशोर बालक तथा बलिकाओं की विद्यालयी वातावरण में शिक्षा से सम्बन्धित समस्यायें शैक्षिक समस्यायें कहलाती हैं।

(4) **सामाजिक समस्यायें** : किशोर बालक तथा बालिकाओं की सामाजिक वातावरण से सम्बन्धित समस्यायें सामाजिक समस्यायें कहलाती हैं।

(5) **अध्ययन** : अध्ययन से आशय किसी विषय का पूर्ण अनुशीलन है। इसके अन्तर्गत किशोरावस्था की विभिन्न शैक्षिक और सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित अध्ययन किया गया है और उनके विश्लेषण के पश्चात् समस्याओं के निवारण हेतु उपाय प्रस्तुत किये गये हैं।

1.9 अनुसंधान की आवश्यकता एवं महत्त्व (Needs and Significance of the Study)

आधुनिक जीवन में विकास व प्रगति के लिये प्रयत्न किये जा रहे हैं। इसके लिये शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करती है।

यूनेस्को के अनुसार –

''मानवता, न्याय, स्वतंत्रता और शांति के लिये संस्कृति और शिक्षा में व्यापक विस्तार की आवश्यकता है जो व्यक्ति की गरिमा के लिये आवश्यक है। यह एक पवित्र कर्त्तव्य है जिसे सभी राष्ट्रों को आपसी सहयोग और संबंध की भावना से पूरा करना चाहिये।''

यदि यह कहा जाये कि समाज सदैव से किशोरों के प्रति उदार एवं दयालु नहीं रहा है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। कुछ लोगों की तो यह धारणा रही है कि किशोरों को कड़े अनुशासन में रखा जाना आवश्यक है। अन्यथा उनका समुचित विकास नहीं हो सकेगा। किशोर मन के उचित अध्ययन के अभाव में अधिकांश व्यक्ति किशोरों के प्रति शुष्क एवं निर्मम हो जाते हैं ओर उनके प्रति कठोर व्यवहार करते हैं। अतः अध्यापक, माता–पिता या अन्य व्यक्ति जो किसी न किसी रूप में किशोर के सम्पर्क में आते हैं उनके लिये किशोर एवं किशोरावस्था के विकास के गहन अध्ययन की आवश्यकता है। इसके अभाव में वे किशोर के उचित पथ प्रदर्शक भी नहीं बन सकते हैं तथा इसके विपरीत अत्यधिक नियंत्रण बनाये रखने के प्रयास से उनकी निर्बाध वृद्धि में रुकावट पैदा होती है। जिससे उनका आत्मविश्वास भी कमजोर हो जाता है। किशोरावस्था के अध्ययन के अभाव में उनकी आवश्यकतायें, समस्यायें एवं अभिरुचियाँ आदि नहीं समझ पाते हैं और इस कारण भी उन्हें घर में, कक्षा–कक्ष में तथा समाज में उचित एवं सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार नहीं कर पाते हैं।

कुछ माता–पिता एवं अध्यापक बिना मनोवैज्ञानिक अध्ययन के भी अपने किशोरों के प्रति सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार करते हैं, तथा उनका मनोबल बढ़ाने का प्रयास करते हैं। किशोरों की समस्याओं के अध्ययन का महत्व इसलिये भी बढ़ जाता है कि आज का किशोर भविष्य का राजनेता, प्रशासनिक अधिकारी, शिक्षक तथा सेवा के अन्य क्षेत्रों में प्रवेश करेगा। इसलिये वर्तमान एवं भविष्य को देखते हुए शोधकर्ता द्वारा किशोरों की शैक्षिक एवं सामाजिक समस्याओं का अध्ययन करके उनके विश्लेषण उपरान्त समस्याओं के निराकरण हेतु आवश्यक सुझाव प्रस्तुत किये जायेंगे जो इस दिशा में कारगर साबित होंगे। यही शोधकर्ता का एक सार्थक प्रयास होगा।